अंक -6

पूर्वोत्तर भारती

वर्ष 2021

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

उमरोई रोड, उमियम, मेघालय-793103

भाकृअनुप गीत

जय जय कृषि परिषद भारत की
सुखद प्रतीक हरित भारत की
कृषिधन पशुधन मानव जीवन
दुग्ध मत्स्य फल यंत्र सुवर्धन
वैज्ञानिक विधि नव तकनीके
पारिस्थितिकी का संरक्षण
सश्य श्यामला छवि भारत की
जय जय कृषि परिषद भारत की
हिम प्रदेश से सागर तट तक
मरु धरती से पूर्वोत्तर तक
हर पथ पर है मित्र कृषक की
शिक्षा शोध प्रसार सकल तक
आशा स्वावलंबित भारत की
जय जय कृषि परिषद भारत की
जय जय कृषि परिषद भारत की

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

पूर्वोत्तर भारती

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

उमरोई रोड, उमियम, मेघालय–793103

संरक्षक एवं प्रकाशक
डॉ. वी.के. मिश्रा

प्रधान सम्पादक
श्री राम दयाल शर्मा

उप सम्पादक
डॉ. वी.के. वर्मा

सलाहकार मंडल
डॉ. संदीप घटक, प्रधान वैज्ञानिक
डॉ. एस. पी. दास, प्रधान वैज्ञानिक (त्रिपुरा केन्द्र)
डॉ. महक सिंह, वैज्ञानिक (नागालैंड केन्द्र)
डॉ. एस.के. शर्मा, वैज्ञानिक (मणिपुर केन्द्र)
डॉ. रघुवीर सिंह, वैज्ञानिक (अरूणाचल प्रदेश केन्द्र)
डॉ. एस. के. दास, वैज्ञानिक (सिक्किम केन्द्र)
डॉ. लुंगमुआना, वैज्ञानिक (मिजोरम केन्द्र)

टाइपिंग
श्रीमती शांति धोज सुनार, यू डी सी

© इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री प्रकाशक की अनुमति के बिना कहीं भी प्रस्तुत करना निषेध है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण पूर्णतया संबंधित लेखक के हैं।
संस्थान अथवा राजभाषा अनुभाग का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

मुद्रित : रूमी जुमी एंटरप्राइज, सिक्समाइल, गुवाहाटी-22

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख शीर्षक–लेखक	पृष्ठ सं.
1	एकीकृत जैविक खेती प्रणाली (आईओएफएस) मॉडल ने मेघालय में छोटे किसानों की उत्पादकता और आय को बढ़ाया: एक सफलता की कहान जयंत लाएक, अनूप दास, कृष्णप्पा आर, संदीप पात्रा, पंकज बैस्वार, एस हजारिका और वी के मिश्रा	1
2	भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी पालन का दायरा सौरभ देवरी, संदीप घटक, जी. कादिरवेल, समीर दास, राकेश कुमार, सुनील डोले, किशोर कुमार बरुआ और आर.डी. शर्मा	6
3	पूर्वोत्तर भारत में पाए जाने वाले महत्वपूर्ण पशुजन्य (जूनोटिक) रोग एवं उनके रोकथाम–संबंधी उपाय समीर दास, ए. अरुण प्रिंस मिल्टन, संदीप घटक एवं वीरेंद्र कुमार वर्मा	9
4	भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में मसाला उत्पादन में आधुनिक विकास वीरेंद्र कुमार वर्मा एवं एम. बिलाशिनी देवी	12
5	बकरियों में परजीवियों से होने वाले रोग एवं इसका निदान राकेश कुमार, महक सिंह, मीणा दास, एन.उत्तम सिंह, अजय कुमार यादव, राम दयाल शर्मा एवं वी. के. मिश्रा	16
6	लाभदायक शूकर पालन डॉ० कादिरवेल गोविंदसामी, डॉ० संदीप घटक, श्री आर.डी. शर्मा	19
7	हरी खाद का उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने में उपयोग संजय कुमार गुप्ता, राहुल कुमार, सुरेश यादव एवं संदीप जायसवाल	22
8	सेब का मुख्य रोग एवं कीट और उनका प्रबंधन डॉ० रघुवीर सिंह	24
9	जूट पौधों के छाल एवं रूट–कटिंग्स के अपगलन/ रेटिंग के लिये यांत्रिकृत पानी की टंकी का विकास एवं परीक्षण डॉ० अभय कुमार ठाकुर, डॉ० विद्या भूषण शंभू , डॉ० इन्दुशेखर सिंह एवं राम दयाल शर्मा	26
10	औषधीय मशरूम : रेशी (गैनोडर्मा लुसिडम) की उन्नत खेती डॉ. रघुवीर सिंह	30
11	रेमी की उपयोगिता डॉ० बी. वी. शंभू, डॉ० एल.के. नायक, श्री.आर. डी. शर्मा, डॉ० ए के ठाकुर	32
12	रोगाणुरोधी प्रतिरोध: मानव और पशु स्वास्थ्य के इंटरफेस पर एक उभरता हुआ सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट संदीप घटक, एएपी मिल्टन, समीर दास, सौरव देवरी, के.के. बरुआ, अर्नब सेन, आरडी शर्मा	35
13	जैविक खेती तथा उनकी विधियां सुरेश यादव, संदीप जायसवाल, बृजेश यादव, दिनेश कुमार यादव एवं गणपत लौहार	38
14	पादप विषाणु: खाद्य और पोषाहार सुरक्षा के लिए खतरा सुशील कुमार शर्मा, ओइनम प्रियोदा देवी, सुभ्रा सैकत रॉय, संदीप घटक और राम दयाल शर्मा	41
15	विंग्ड बीन की खेती: किसानों के लिए वरदान जीतेन्द्र कुमार सोनी, सुनील सुननी, लुंगमुआना, अमित कुमार, विशम्भर दयाल एवं आई शकुंतला	44
16	हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी कार्य राम दयाल शर्मा, राधा रमण देबनाथ, पिन्टू कुमार	47
17	कोरोना वायरस सुजय दास, राम दयाल शर्मा	49
18	वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग से कर रहे हैं ऑफिस मीटिंग्स सुजय दास	51
19	इंटरनेट के कुछ महत्वपूर्ण और रोचक तथ्य सुजय दास	53

20	चाय की ऐतिहासिक यात्रा श्री सुजय दास एवं श्री आर. डी. शर्मा	56
21	वंदेमातरम की रचना श्री सुजय दास एवं श्री आर. डी. शर्मा	59
22	भाषा और देश श्री सुजय दास, श्री आर. डी. शर्मा, पिन्टू कुमार	62
23	राष्ट्रवाद का उभार और प्रेमचंद की भाषा- दृष्टि लोकनाथ तिवारी	64
24	राजभाषा हिंदी की विकास यात्रा डॉ० के. डी. साह, श्री आर. डी. शर्मा, श्री गौरांग घोष	68
25	आदि काल से ही समस्त संसार में भारतखण्ड की देवियों की पूजा की जाती थी श्री आर. डी. शर्मा एवं श्री एस. अग्निहोत्री	71
26	डायरी सत्य प्रकाश 'भारतीय' एवं रीता प्रकाश	76
27	कोविड -19 के बाद शिक्षा व्यवस्था सुश्री सिम्पी मिश्रा	81
28	कहानी: नालायक फरिश्ता एकलव्य केसरी	83
29	प्रकृति की भाषा आभा ठाकुर	84
30	मुझको कैसे बाँधोगे राजीव रंजन	85
31	भाग्यशाली होते हैं वे लोग सुश्री मनीषा दूबे 'निम्मी'	86
32	ए किसान, तेरे तो अच्छे दिन आए हैं सुश्री मनीषा दूबे 'निम्मी'	86
33	मैं हिन्दी हूँ..! सुश्री सिम्पी मिश्रा	86
34	मुझे याद है श्री पिन्टू कुमार	87
35	नियुक्ति, बदली और तरक्की श्री राकेश कुमार कुशवाहा	87
36	कोरोना जा तू श्री एकलव्य केसरी	88
37	भारत माता का आंचल श्रीमती पूनम केशरी	88
38	आ अब लौट चलें श्री पिन्टू कुमार	89
39	कविता-रूमाल का कोरस प्रो. संजय जायसवाल	90
40	'ख्वाहिशों की पोटली' प्रो. संजय जायसवाल	91
41	आंखवालों को अब नहीं दिखता प्रो. संजय जायसवाल	92
42	अनुसंधान परिसर की चित्रकथा शांति धोज सुनार	93

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर
ICAR Research Complex for North Eastern Hill Region
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
उमियम, मेघालय -793103 Umiam, Meghalaya-793103

निदेशक की कलम से.....

नव वर्ष 2022 की अशेष मंगलकामनाएं!

एक समय था जब भारत वर्ष को दुनिया गरीब देश के रूप में पहचानती थी परंतु आज का भारतवर्ष 'राइजिंग इंडिया' के रूप में पहचाना जाता है। आज हमारा देश भारत विश्व में एक आर्थिक महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। इस क्रम में यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि भारतवर्ष का इतिहास, परंपरा, विरासत, धरोहर एवं मूल्य गौरवशाली रहा है और भारतवर्ष अपने आपको पुन: दोहरा रहा है एवं इसे सब ने माना है कि इस विकास में शोध एवं अनुसंधान संस्थानों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। इस संबंध में हमारे देश के यशस्वी प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने एक बार कहा था कि 'हमें विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचार को राष्ट्रीय प्राथमिकता के शीर्ष पर रखने की जरूरत है। सर्वोपरि हमें हमारे देश में विज्ञान एवं वैज्ञानिकों का गौरव और प्रतिष्ठा बहाल करनी है। वैज्ञानिकों से ज्यादा उचित, प्रभावी, टिकाऊ एवं किफायती प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिए पारंपरिक स्थानीय ज्ञान का समावेश करने का आग्रह है ताकि विकास एवं प्रगति में जबरदस्त योगदान मिल सके' इसके साथ ही साथ उन्होंने 'जय जवान, जय किसान, जय विज्ञान एवं जय अनुसंधान' का भी नारा दिया।

चूँकि भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है इसलिए किसानों के विकास से ही देश का विकास होना संभव है। इस क्रम में हमारा संस्थान भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, उमियम, मेघालय अपने छह केंद्रों के साथ पूर्वोत्तर पर्वतीय क्षेत्र के किसानों के आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थिति को सुदृढ़ करने हेतु निरंतर प्रयासरत है। वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अनुसंधान को समाज को हस्तांतरित करना अत्यधिक आवश्यक है। इस हेतु संस्थान प्रौद्योगिकियों को सफलतापूर्वक अपनाने के लिए उद्यमिता विकास प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन करता रहा है। विगत कुछ वर्षों में तकनीकी विकास एवं प्रसार कार्यक्रमों के कारण यहां के निवासियों में खेती के प्रति उत्साह बढ़ी है परंतु अभी भी यहां खाद्यान्न व पशुपालन के क्षेत्र में समस्याएं हैं। परंपरागत रूप से खेती करने वाले किसान अपनी लाभप्रदता को देखते हुए नाखुश हैं और खेती के व्यवसाय से विमुख हो रहे हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए संस्थान ने रोजगार समोन्मुख लाभदायक एकीकृत कृषि प्रणाली एवं उन्नत तकनीक को विकसित किया है।

हमारे संस्थान के लिए यह अपार हर्ष का विषय है कि संस्थान के 48 वें स्थापना दिवस के सुअवसर पर संस्थान की वार्षिक राजभाषा पत्रिका 'पूर्वोत्तर भारती' के छठे अंक को प्रकाशित किया जा रहा है। इस पत्रिका में सरल एवं सहज भाषा में तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराई गई है तथा ज्ञान समृद्ध करने हेतु लोकप्रिय लेख व पत्रिका को रोचक बनाने हेतु कविताओं तथा चित्रकथाओं को भी शामिल किया गया है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि इसमें तकनीकी लेख किसान एवं उद्यमियों व हितधारकों के लिए अत्यधिक लाभप्रद साबित होगा तथा अन्य लोकप्रिय लेख सभी का ज्ञान समृद्ध करेगा एवं यह पत्रिका राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए एक मील का पत्थर साबित होगा। इस पत्रिका के प्रकाशन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दिए गए सहयोग के लिए सभी को धन्यवाद। मुझे आशा है सुधी पाठक अपनी प्रतिक्रिया और राय अवश्य देंगे ताकि इसे और बेहतर बनाया जा सके तथा आगामी अंकों में त्रुटियों को दूर किया जा सके।

(डॉ. वी. के. मिश्रा)
निदेशक

आज़ादी का अमृत महोत्सव

Azadi Ka Amrit Mahotsav

एकीकृत जैविक खेती प्रणाली (आईओएफएस) मॉडल ने मेघालय में छोटे किसानों की उत्पादकता और आय को बढ़ाया: एक सफलता की कहान

जयंत लाएक, अनूप दास, कृष्णप्पा आर, संदीप पात्रा, पंकज बैस्वार, एस हजारिका और वी के मिश्रा

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम – 793103, मेघालय

परिचय

जैविक खेती जो ज्यादातर पशु खाद, जैविक अपशिष्ट, फसल चक्र, फलियां और जैविक कीट नियंत्रण पद्धति पर निर्भर करती है तथा उत्तर पूर्व भारत के बहुसंख्यक क्षेत्र विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्र में प्रचलित है। देश के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का प्रयोग बहुत कम होता है और उनमें से अधिकांश का उपयोग घाटी पारिस्थितिकी तंत्र में किया जाता है लेकिन ऊपरी पारिस्थितिकी तंत्र रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से मुक्त होता है। हालांकि, 'जैविक खेती' की सफलता में प्रमुख बाधा बड़ी मात्रा में जैविक आदानों की अनुपलब्धता है और फसलों के लिए पोषक तत्वों की मांग को पूरा करने के लिए पशु मल का उपयोग अकेले पर्याप्त नहीं है। एकीकृत जैविक खेती प्रणाली (आईओएफएस) जो सभी ऑन-फार्म और ऑफ-फार्म संसाधनों का विवेकपूर्ण तरीके से उप-उत्पादों या एक के आउटपुट को दूसरे के लिए इनपुट के रूप में उपयोग करके जैविक खेती को टिकाऊ और लाभदायक बना सकती है । इस प्रकार, पर्याप्त पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण रणनीतियों के साथ-साथ फसल, फल और सब्जियां, पशुधन, मुर्गी पालन, मछली, बहुउद्देशीय वृक्ष प्रजातियों, मशरूम, आदि जैसे पूरक और पूरक उद्यमों को एकीकृत करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। ऐसा ही एक आईओएफएस मॉडल एनईएच क्षेत्र, उमियम के लिए आईसीएआर रिसर्च कॉम्प्लेक्स में फसल, फल और सब्जियां, पशुधन, मछली आदि जैसे विभिन्न उद्यमों को एकीकृत करके पर्याप्त पोषक तत्वों की रीसाइक्लिंग रणनीतियों और खेत के तालाब से पानी के उपयोग के साथ बनाया गया है।

पहाड़ियों में जल संचयन संरचनाओं/सिंचाई सुविधाओं की कमी के कारण, किसान वर्ष में केवल एक ही फसल की खेती कर रहे हैं जिससे फसल की सघनता कम होती है और आय सीमित होती है। हालांकि, बहुत अधिक इन्फिल्टरेशन दर और रिसाव के नुकसान के कारण पहाड़ियों में पानी का संरक्षण बहुत कठिन है। कम लागत वर्षा जल संचयन संरचना 'जलकुंड' जिसे सिल्पालिन से लाइनिंग किया जाता है। इसकी 30,000-45,000 लीटर पानी की भंडारण क्षमता होने के कारण इसे स्टोरेज किया जा सकता है व बाद में इस जल का उपयोग किया जा सकता है। इस तरह का एकीकृत जैविक खेती प्रणाली (आईओएफएस) मॉडल सफलता के लिए केंद्र बिंदु हो सकता है। आईओएफएस के तहत डेयरी, शूकर पालन या मुर्गी पालन जैसे पशुधन घटकों के प्रबंधन और साल भर गुणवत्ता वाली खाद और आय सृजन की आपूर्ति के लिए खाद तैयार करने पर भी जोर दिया जाना चाहिए। आईसीएआर-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम की वित्तीय सहायता से मेघालय के री-भोई जिले में माइनसेन, पिन्थोर और उमडेन उम्बाथियांग गांव में जैविक खेती-जनजातीय उप योजना पर नेटवर्क परियोजना के तहत एक मॉडल गांव अवधारणा (एनपीओएफ-टीएसपी) के तहत आईओएफएस प्रौद्योगिकी के प्रसार के लिए एक आयोजन किया गया। गाँव के कई किसानों ने आईओएफएस मोड में जैविक खेती करना शुरू कर दिया है। इससे फसल की उत्पादकता में वृद्धि हुई और उनके घर की खेती में लाभकारी फसलों को उगाने और मवेशी, शूकर, मुर्गी पालन आदि में विविधता प्रदान की ।

2 . प्रौद्योगिकी का विवरण (पद्धति):

वर्ष 2014 से लेकर अब तक फसल और पशुधन की पसंद और वरीयता के अनुसार कई आईओएफएस मॉडल गांव विकसित किए गए हैं। उन्होंने फसलें (मक्का), सब्जियां (टमाटर, फ्रेंच बीन, गोभी, फूलगोभी, ब्रोकोली, टमाटर, आलू, सलाद, और गाजर), मसाला फसलें (अदरख , हल्दी, मिर्च), फलों के पेड़ (असम नींबू, पपीता, केला, अमरूद आदि), पशुधन (डेयरी/शूकर/कुक्कुट), जल संचयन (जलकुंड), खाद इकाई आदि को एकीकृत किया है। (चित्र 1)। जलकुंड जैसे छोटे जल संचयन संरचना का पानी सर्दियों के महीनों में सिंचाई के लिए उपयोग किया जाता है। इससे फसल उत्पादकता में वृद्धि हुई और उनके घर की खेती में लाभकारी फसलों को उगाने और मवेशी, शूकर, मुर्गी पालन आदि में विविधता प्रदान की। आईओएफएस मॉडल फसल विविधीकरण को बढ़ावा देता है जिससे किसानों को साल भर खाद्य सुरक्षा और रोजगार मिलता है। इसमें जहां कहीं भी संभव हो, एक उद्यम घटक के आउटपुट का उपयोग अन्य संबंधित

उद्यमों के लिए इनपुट के रूप में शामिल है, उदाहरण के लिए, फसल अवशेषों और खेत के कचरे के साथ मिश्रित मवेशियों के गोबर को पोषक तत्वों से भरपूर वर्मी – कम्पोस्ट में परिवर्तित किया जा सकता है जिससे बाहरी स्रोतों से जैविक खाद पर निर्भरता कम होती है। डेयरी, मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, बकरी पालन, वर्मी कम्पोस्टिंग और अन्य पशुधन उद्यमों के विवेकपूर्ण मिश्रित उपयोग से अतिरिक्त आय उत्पन्न करने में मदद मिलेगी। लौकी, चाउ-चाउ, खीरा, तुरई आदि जैसी चढ़ाई वाली सब्जियां जलकुंड के एक तरफ जलकुंडों के ऊपर बने ढांचे पर खड़ी सघनता के लिए उगाई जाती थी। कद्दू को जालकुंड के दूसरी तरफ उठाया गया और जमीन पर रेंगने दिया गया। बरसात के मौसम में टैरेस पर जल संचयन किया गया और जलकुंड में पानी जमा किया गया । मॉडल में जलकुंड के बहुउद्देश्यीय उपयोग हैं जैसे सिंचाई, शूकर पालन, मुर्गी पालन, मशरूम ब्लॉक बनाना आदि। सब्जी के उन्नत बीजों के वितरण से पहले, लाभार्थी किसानों को नर्सरी बढ़ाने और सब्जी की खेती के वैज्ञानिक तरीकों के लिए प्रशिक्षित किया गया था। गोभी, ब्रोकली और फूलगोभी जैसी कोल फसलों की पौध उगाने के लिए गांवों में सामुदायिक नर्सरी का गठन किया गया था। मजबूत और स्वस्थ सब्जी के पौधे प्राप्त करने के लिए यह गतिविधि बहुत महत्वपूर्ण पाई गई।

अतिरिक्त आय प्राप्त करने और कृषि संसाधनों के कुशल उपयोग के लिए मशरूम हाउस और हनी बॉक्स जैसे नए हस्तक्षेप भी किए गए। जहां धान के पुआल का उपयोग जैविक मशरूम के उत्पादन के लिए किया जाता है, वहीं मधुमक्खी परागण और सभी फसल प्रदर्शनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मशरूम की खेती न केवल अतिरिक्त आय प्रदान करती है, बल्कि इसकी उच्च प्रोटीन सामग्री ग्रामीण क्षेत्रों में पोषक तत्वों की सुरक्षा का एक स्रोत भी है और इसके अलावा इसमें कई पोषक तत्व भी होते हैं।

प्रौद्योगिकी के फ्लो चार्ट/ कदमः

एकीकृत जैविक खेती प्रणाली के घटक

↓

अनाज : चावल और मक्का

↓

दलहन/ तिलहन : मूंगफली, दाल, सोयाबीन और मटर (मसूर और मटर को चावल की परती में उगाए जाते हैं)

↓

रसोई गार्डनः चुकंदर की जड़, मूली, मिर्च , ब्रोकोली, धनिया, सलाद, फ्रेंचबीन, टमाटर, बैंगन , भिंडी, गोभी, फूलगोभी, खीरा, कद्दू, डोलिकोस बीन (मिर्च मक्का के साथ इंटरक्रप्ड है)

↓

डेयरी इकाई : एक दुधारू गाय और एक बछड़ा (कुल दूध उपज = 1480 लीटर/दूध देने का सीजन यानी 8 महीने प्रति वर्ष और गाय के गोबर उपज = 5 टन/वर्ष)

↓

फलः असम नींबू, पपीता और अमरूद

↓

मत्स्य इकाईः समग्र मत्स्य पालन

↓

कम्पोस्टिंग यूनिट / वर्मी कम्पोस्टिंग यूनिट

↓

हेडगेरो फसलें (टेफ्रोसिया एसपी.)

↓

चारा (गिनी घास, नेपियर घास आदि)

डेरी यूनिट

वर्मी कम्पोस्टिंग यूनिट

शूकर की नस्ल और आवास में सुधार

सर्दी की सब्जियों हेतु
जलकुंड के पानी का उपयोग

आईओएफएस मॉडल का समग्र दृश्य

अदरक की खेती

जलकुंड में मछली पालन और उसके ऊपर
बाँस की मचान पर कददू

हाईवे के पास ऑर्गेनिक आउटलेट

मशरुम की खेती

चित्र 1. श्री ज़िल मकरोह के खेत में एकीकृत जैविक खेती प्रणाली (आईओएफएस) मॉडल (0.27 हेक्टेयर)

3. जैविक खेती प्रणाली के परिणाम/प्रदर्शन:

क्लस्टर दृष्टिकोण आधारित आईओएफएस मॉडल से प्राप्त परिणाम बहुत उत्साहजनक थे क्योंकि इसने विविध खाद्य पदार्थ के साथ साल भर किसानों को रोजगार और आय प्रदान की। चूंकि, किसान परंपरागत रूप से दशकों से बिना किसी सिंथेटिक उर्वरक के जैविक खाद के न्यूनतम उपयोग के साथ फसल उगा रहे थे, इसलिए व्यवस्थित तरीके से जैविक प्रथाओं को अपनाने के बाद उपज के स्तर में काफी वृद्धि हुई। आईओएफएस के तहत पारंपरिक अभ्यास से मक्का, फ्रेंच बीन, आलू, अदरक, टमाटर, गाजर और मिर्च की उपज में क्रमश: लगभग 20–30, 40–45, 25–30, 33–40, 45–50, 37–50 और 27–30 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। अनानस, असम नींबू, अमरूद इत्यादि जैसे फलों के पेड़ों की औसत उत्पादकता भी जैविक प्रणाली के तहत 35–40, 27–30 और 30–35 प्रतिशत पहले की परंपरागत प्रणाली की तुलना में वृद्धि हुई थी। राजमार्ग के पास एक छोटा आउटलेट स्थापित किया गया था ताकि किसान गांव से अपने जैविक उत्पाद (सब्जियां, फल, मसाले) को अपेक्षाकृत अधिक कीमत यानी पारंपरिक उत्पादों की तुलना में 10–20 प्रतिशत तक अधिक कीमत पर बेच सकें । जैविक उत्पादों के लिए प्रीमियम मूल्य प्राप्त करने और किसानों की आय को और बढ़ाने के लिए गोद लिए गए गांवों के किसानों के लिए जैविक प्रमाणन (पीजीएस मोड) प्रक्रिया भी शुरू की गई (अनंतिम पंजीकरण संख्या दी गई)। बाहरी बीजों पर निर्भरता कम करने और उत्पादन लागत को कम करने के लिए खेत में ही बीज पैदा करने पर जोर दिया गया। कुछ फसलों के प्रमाणित

जैविक या रासायनिक रूप से अनुपचारित बीज भी हर समय उपलब्ध नहीं थे। सफल आईओएफएस सिस्टम (चावल, मक्का, अदरक, हल्दी, सोयाबीन, मटर, दाल, फ्रेंच बीन, कद्दू, लौकी, स्क्वैश, पत्तेदार सरसों, धनिया, पालक, बैंगन, मिर्च आदि) बीज के लिए अपनी कुल आवश्यकता का 65–80% उत्पन्न कर सकता था और 20–25% बीज (टमाटर, फूलगोभी, गोभी, ब्रोकोली, गाजर, चुकंदर, मूली आदि) बाजार से खरीदे जाने थे।

दो किसानों द्वारा अपनाए गए आईओएफएस मॉडल की केस स्टडी

आजीविका मूल्यांकन

दो प्रगतिशील किसान, श्री जरिल मकदोह और श्रीमती स्कोला कुर्बा, गांव में आईओएफएस मॉडल के अग्रदूत थे और उन्होंने मार्च 2014 में अपना आईओएफएस मॉडल शुरू किया था। दोनों किसानों की खेती की प्रति वर्ष आईओएफएस मॉडल के तहत 0.34 हेक्टेयर क्षेत्र में औसत लागत रु . 59,945 /- (रु . 174970/- प्रति हेक्टेयर) दर्ज की गई। मॉडल के फसल घटक में अधिकतम व्यय (32%) किया गया था। एक वयस्क गाय और एक बछड़े वाली डेयरी इकाई में खेती की कुल लागत का 31 प्रतिशत दर्ज किया गया, जबकि शूकर पालन, मत्स्य पालन, न्यूट्रिएंट साइकिलिंग और रेशमकीट पालन घटक खेती की कुल लागत का क्रमश: 16, 8, 4 और 14 प्रतिशत दर्ज किया गया (तालिका 1)। चूंकि, पूर्वोत्तर भारत की मिट्टी प्रकृति में अम्लीय है, इसलिए फॉस्फोरस पोषण के लिए रॉक फॉस्फेट (100–150 किग्रा / हेक्टेयर) और चूना (एकांतर तीन वर्षों में 450–500 किग्रा / हेक्टेयर) का प्रयोग किया जाता है। केवल जैविक खाद ही फसल की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है। आईओएफएस मॉडल से होने वाले लाभों को ध्यान में रखते हुए 0.34 हेक्टेयर क्षेत्र से शुद्ध रिटर्न रुपये 64,889 /- (रुपये 189,401/- प्रति हेक्टेयर) प्रति वर्ष हासिल की गई जो की इस क्षेत्र के किसान द्वारा आम प्रथा चावल मोनोक्रॉपिंग अभ्यास प्रणाली की तुलना में अधिक है। कुल शुद्ध लाभ में सबसे अधिक मॉडल की डेयरी (38%) और उसके बाद फसल घटक (32%) और शूकर पालन इकाई (23%) थी। आईओएफएस मॉडल के तहत रुपये के शुद्ध रिटर्न को ध्यान में रखते हुए 0. 3426 हेक्टेयर में 64,889 /- प्रति वर्ष शुद्ध आय यानी रुपए 178/- प्रतिदिन की दर से प्राप्त किया गया जो कि चार से पांच सदस्यीय परिवार के जीवनयापन के लिए एक मामूली राशि है।

आईएफओएस में फार्म पोषक तत्वों के पुनर्चक्रण से 63.5 किग्रा N, 19.5 किग्रा P_2O_5 और 53.3 किग्रा K_2O (तालिका 1) का उत्पादन हो सकता है। इसलिए, कुल N का 95%, कुल P_2O_5 का 82% और कुल K_2O आवश्यकता का 96% मॉडल के भीतर ही पूरा किया जा सकता है और कुल N का केवल 5%, कुल P_2O_5 का 18% और कुल K_2O आवश्यकता का 4%, मॉडल को बनाए रखने के लिए बाहरी स्रोतों से पूरा करना आवश्यक है। मॉडल हेतु बाहरी स्रोत से पोषक तत्वों की आवश्यकता को तालाब गाद के कुशल रीसाइक्लिंग, फली के साथ इंटरक्रापिंग, बायोफर्टिलाइजर जैसे अजोटोबेक्टर, राइजोबियम, फास्फोरस साल्यूब्लाइजिंग सूक्ष्मजीव आदि के साथ काफी हद तक कम किया जा सकता है। अत: इस मॉडल को बनाए रखने के लिए बाहरी स्रोतों से पोषक तत्व की आवश्यकता होगी।

तालिका 1. श्री जिरिल मकरोह और श्रीमती स्कोला कुर्बा के आईओएफएस मॉडल और अर्थशास्त्र के घटक (औसत क्षेत्र 0.34 हेक्टेयर)

कृषि प्रणाली के घटक	कुल क्षेत्रफल	लागत (रु.)	शुद्ध रिटर्न (रु.)	शुद्ध रिटर्न (रु./हेक्टेयर)	बी:सी अनुपात*
फसलें (अनाज, दालें, सब्जियां, फल और चारा फसलें)	3290 वर्ग मीटर	19,320	20,840	–	2.08
डेयरी (1 दुधारू गाय + 1 बछड़ा)**	20 वर्ग मीटर	18,750	25,150	–	
शूकर पालन इकाई (2 शूकर+8 सूअर के बच्चे)***	30.5 वर्ग मीटर	9650	15,350		
मत्स्य पालन (जलकुंड)	45.5 वर्ग मीटर	5000	–3750	–	
पोषक तत्वो का आवर्तन (कृमि खाद/एफवाईएम/ शूकर की खाद/अवशेषों का पुनर्चक्रण/रॉक फॉस्फेट का अनुप्रयोग/चूना का अनुप्रयोग)	25 वर्ग मीटर	2725	–1451	–	
रेशमकीट पालन	15 वर्ग मीटर	8500	8,750		
कुल	3426 वर्ग मीटर = 0.34 हेक्टेयर	59,945	64,889	1,89,401	
शुद्ध आय/दिन			178	518	

*: सकल लाभ / खेती की लागत

**: (8 महीने की स्तनपान अवधि + 5 लीटर दूध / दिन @ 35 /- रुपये) और कच्चे गोबर का उत्पादन 7 किलो / दिन।

***: शूकर की खाद का उत्पादन 5 किलो/दिन और शूकरों की बिक्री 2600/- रुपये की दर से (45 दिन पुरानी)

4. बाधाएं

बड़े क्षेत्रों में गरीब किसानों द्वारा आईओएफएस मॉडल अपनाने के लिए प्रमुख बाधाओं में, (i) गुणवत्ता वाले जैविक कीटनाशकों की सीमित उपलब्धता और कुछ बीमारियों जैसे अदरक की नरम सड़ांध, टमाटर का मुरझाना, आलू का झुलसना आदि के प्रबंधन में कठिनाई। (ii) गोभी, टमाटर, फूलगोभी आदि सब्जियों की उन्नत किस्मों के बीजों की उच्च लागत और इन फसलों के जैविक बीजों की अनुपलब्धता, (iii) पर्याप्त मात्रा में गुणवत्ता वाली खाद की अनुपलब्धता और (iv) शूकर और मुर्गी के लिए उच्च फ़ीड लागत। चूंकि राज्य में जैविक उत्पादों का विपणन और मांग अभी भी अधिक नहीं है, इसलिए किसानों को उनकी उपज का प्रीमियम मूल्य नहीं मिल रहा है। हालांकि, खेती के चारे और बहुउद्देशीय पेड़ों जैसे विभिन्न उद्यमों के कुशल प्रबंधन के साथ, गुणवत्ता खाद उत्पादन के लिए संसाधनों के कुशल पुनर्चक्रण और प्रीमियम मूल्य प्राप्त करने के लिए जैविक प्रमाणीकरण के साथ, आईओएफएस प्रौद्योगिकियां कृषक समुदायों के बीच बहुत लोकप्रिय हो सकती है।

5. निष्कर्ष

क्लस्टर दृष्टिकोण में आईओएफएस मॉडल गोद लिए गए गांव में वास्तविक सफलता है जैसा कि उनकी प्रारंभिक स्थिति की तुलना में उच्च उत्पादकता, आय और रोजगार सृजन से स्पष्ट है। आईओएफएस के लिए लगभग 70% बीज और अधिकांश पोषक तत्वों की आवश्यकता को गांवों से ही पूरा किया जाता है, जिसमें चूना, जैव-उर्वरक, उच्च उपज वाले बीज आदि जैसे बाहरी आदानों पर न्यूनतम निर्भरता होती है। आईओएफएस के अभ्यास के लगभग पांच वर्षों के बाद, विभिन्न उत्पादक फसलों, मछली और पशुधन में प्रारंभिक उत्पादकता की तुलना में क्रमश: 20-45%, 30-50% और 20-30% की वृद्धि हुई। किसानों की वार्षिक आय में लगभग रु. 15000/- वर्ष की वृद्धि हुई। सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों के साथ सहयोग और अभिसरण के माध्यम से, आईओएफएस मॉडल को स्थायी ग्रामीण आजीविका के साधन के रूप में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए राज्य और उत्तर पूर्व के अन्य क्षेत्रों में उन्नत किया जा सकता है।

6. आभार

लेखक मेघालय के किसानों के खेतों में अध्ययन करने के लिए तकनीकी और वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए आईसीएआर-भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम और आईसीएआर उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय (टीएसपी घटक) का आभारी है।

हम चाहते हैं कि सारी प्रांतीय बोलियां, जिनमें सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई है अपने-अपने घर में (प्रांत में) रानी बनकर रहें और आधुनिक भाषाओं के घर की मध्यमणि हिन्दी भारत-भारती होकर विराजती रहें

- गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी पालन का दायरा

सौरभ देवरी, संदीप घटक, जी. कादिरवेल, समीर दास, राकेश कुमार, सुनील डोले, किशोर कुमार बरुआ और आर.डी. शर्मा
भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय

बकरियों को 'गरीब आदमी की गाय' के रूप में जाना जाता है क्योंकि वह समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को गाय के समान लाभ प्रदान करती है। वह न केवल पौष्टिक और आसानी से पचने योग्य दूध की आपूर्ति करती है बल्कि गरीब और भूमिहीन या सीमांत किसान पशु मांस को बेचकर अतिरिक्त आय का नियमित स्रोत भी प्राप्त करते हैं। छोटे आकार के जानवर होने के कारण, बकरियां आसानी से महिलाओं और बच्चों द्वारा प्रबंधित की जा सकती हैं और विभिन्न प्रकार की पत्तियों, झड़ियों, रसोई के कचरे आदि पर अच्छी तरह से पल सकती हैं। बकरियों को पालना सस्ता है, आसानी से उपलब्ध है और इनमें एक दोस्ताना स्वभाव भी रहता है। बकरी की खाद में, गाय की खाद की तुलना में नाइट्रोजन और फॉस्फोरिक एसिड 2.5 गुना अधिक होता है। उन्हें उन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक पाला जा सकता है जहां चारे के संसाधन सीमित हैं और दुधारू मवेशी नहीं पलते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में बकरी पालन ग्रामीणों को लाभकारी रोजगार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी पालन की वर्तमान स्थिति

2019 (20वीं पशुधन गणना) के दौरान देश में कुल बकरी की आबादी 148.88 मिलियन थी, जो पिछली पशुधन गणना (2012) की तुलना में 10.14% अधिक है। देश में कुल पशुधन का लगभग 27.8% योगदान बकरियों का है। अब तक, देश में विभिन्न राज्यों में बकरी की 34 पंजीकृत नस्लें हैं। भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में बकरी की कुल आबादी 5408.24 हजार है जो पिछली जनगणना (19वीं पशुधन गणना) की तुलना में 31.18 प्रतिशत कम है। आठ उत्तर-पूर्वी राज्यों में, असम में सबसे अधिक बकरी आबादी है, इसके बाद मेघालय, त्रिपुरा, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, मणिपुर, नागालैंड और मिजोरम है। पूरे उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी की आबादी में भारी गिरावट आई है। पूरे क्षेत्र से केवल 2 पंजीकृत नस्लें हैं। वे असम हिल बकरी हैं जो असम और मेघालय राज्य तथा नागालैंड में सुमी-ने है। इनके अलावा, उत्तर-पूर्वी राज्यों में अन्य देशी बकरियां भी हो सकती हैं, जिनका वैज्ञानिक अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है।

तालिका: भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी की आबादी (हजार में)

क्रम सं	राज्य	2012 19 वीं पशुधन जनगणना	2019 20 वीं पशुधन जनगणना	% बदलाव
1.	अरुणाचल प्रदेश	305.54	159.74	-47.72
2.	असम	6169.19	4315.17	-30.05
3.	मणिपुर	65.16	38.7	-40.61
4.	मेघालय	473.07	397.5	-15.97
5.	मिजोरम	22.21	14.82	-33.27
6.	नागालैंड	99.35	31.6	-68.19
7.	सिक्किम	113.36	90.51	-20.16
8.	त्रिपुरा	610.92	360.2	-41.04
	पूरे पूर्वोत्तर क्षेत्र में	**7858.8**	**5408.24**	**-31.18**
	पूरे भारत में	135173.09	148884.79	10.14

उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी पालन का दायरा

बकरी पूरे उत्तर-पूर्वी राज्यों की एक महत्वपूर्ण पशुधन जर्मप्लाज्म है क्योंकि वह अत्यधिक जलवायु और प्रबंधन स्थितियों के तहत जीवित रहने की क्षमता रखती हैं। हालांकि, पूरे क्षेत्र में बकरी पालन पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया जो कि बकरी की आबादी के कुल प्रतिशत से स्पष्ट है। यह मुख्य रूप से इसलिए है क्योंकि आदिवासी आबादी ज्यादातर असम और त्रिपुरा राज्यों को छोड़कर पूरे

क्षेत्र पर हावी है। आदिवासी आबादी में शूकर पालन अधिक लोकप्रिय है और इसलिए पारंपरिक शूकर पालन इन राज्यों में सबसे आम पशुधन उद्यम है। हालांकि, फ़ीड सामग्री की अपर्याप्त उपलब्धता, पारंपरिक पालन विधियों और अधिक वायरल रोगों की व्यापकता और टीकों की अनुपलब्धता इस क्षेत्र में शूकर पालन की प्रमुख सीमाएं हैं। शूकर की तुलना में, बकरी प्रबंधन आसान है, जिसमें कम भोजन की आवश्यकता, बीमारियों की कम घटना और टीकों की उपलब्धता, उत्पादन की कम लागत और शेवन (बकरी का मांस) पोर्क की तुलना में बाजार में अधिक कीमत प्राप्त करते हैं और इसमें कोई धार्मिक वर्जना नहीं है। इसके अलावा, मुख्य भूमि से उत्तर-पूर्वी राज्यों में आबादी के प्रवास और क्षेत्र में पर्यटकों के प्रवाह में वृद्धि के साथ विशेष रूप से होटल और रेस्तरां में शेवन (बकरी का मांस) की मांग में वृद्धि हुई है। क्षेत्र में मानव आबादी में वृद्धि के साथ, मांस उत्पादन को तेज करना होगा। मांस उत्पादन बढ़ाने के लिए शूकर और मुर्गी की तुलना में बकरी एक व्यवहार्य विकल्प है क्योंकि वे अनाज के लिए मनुष्य के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करती हैं। वे घास और पेड़ के चारे पर आसानी से जीवित रह सकती हैं।

उत्तर-पूर्वी क्षेत्र की देशी बकरियां ज्यादातर छोटे आकार की होती हैं और इसकी मांस की गुणवत्ता बेहतर होती है। वे स्थानीय वातावरण के लिए अच्छी तरह से अनुकूल हैं। बहुत कम को छोड़कर इस क्षेत्र की देशी बकरियों पर बहुत अधिक वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया गया है। असम हिल बकरी में छोटे इंटर किडिंग अवधि और उच्च जुड़वां प्रतिशत होने की सूचना है। इसलिए, उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों की देशी बकरियों को उत्पादकता और उनके प्रसार में सुधार के लिए एक व्यवस्थित अध्ययन की आवश्यकता है। उपयुक्त प्रजनन रणनीतियों को अपनाकर, बेहतर पोषण प्रबंधन, स्वास्थ्य देखभाल, वैज्ञानिक प्रबंधन और क्षमता निर्माण द्वारा जागरूकता पैदा करके स्वदेशी नस्लों की उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है। क्षेत्र की जनजातीय आबादी को विभिन्न क्षमता निर्माण कार्यक्रम और विभिन्न इनपुट प्रदान करके पारंपरिक शूकर पालन से बकरी पालन में स्थानांतरित करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। समृद्ध वनस्पति और लगभग वर्ष भर विभिन्न वृक्ष चारे की उपलब्धता के कारण इस क्षेत्र में बकरी पालन से अतिरिक्त लाभ होगा।

बकरी पालन में सुधार के लिए रणनीतियाँ

जैसा की चर्चा की गई है, उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी पालन का जबरदस्त स्कोप है। हालांकि, वर्तमान परिदृश्य बहुत उत्साहजनक नहीं है, जो कि सभी उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी की आबादी में गिरावट से स्पष्ट है। इसलिए, इस क्षेत्र में बकरी पालन के समग्र सुधार के लिए कुछ रणनीतियों को तैयार करने की आवश्यकता है।

- उत्तर-पूर्वी राज्यों में ज्यादातर आदिवासी आबादी है और पारंपरिक रूप से उनका झुकाव शूकर पालन की ओर है। इसलिए, देशी आबादी को बकरी पालन के लिए प्रोत्साहित करने के लिए पूरे क्षेत्र में जागरूकता कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है। उन्हें बकरी पालन से होने वाले फायदों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए। विशेष रूप से ग्रामीण महिलाओं और बेरोजगार युवाओं में प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण कार्यक्रम इस पेशे को अपनाने के लिए उनके आत्मविश्वास को बढ़ावा देंगे।
- इस क्षेत्र में बकरियों की बहुसंख्यक आबादी स्थानीय स्वदेशी प्रकार की है। हालांकि, असम हिल बकरी, ब्लैक बंगाल और सुमी-ने बकरी आबादी, जो पंजीकृत नस्ल हैं, विभिन्न राज्यों में उपलब्ध हैं। विशेष रूप से असम हिल बकरी और ब्लैक बंगाल बकरियां अपने बेहतर मांस की गुणवत्ता और अधिक बच्चा जनने के लिए जानी जाती हैं। ये जानवर स्थानीय वातावरण के अनुकूल होते हैं और इन्हें चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से प्रचारित करने की आवश्यकता होती है।
- उत्तर पूर्वी राज्यों में बायोमास प्रचुर मात्रा में है और बकरी को विभिन्न पेड़ों के पत्तों, झाड़ियां, चारे आदि के साथ खिलाया जा सकता है। इसलिए, उपलब्धता और मौसम के अनुसार अलग-अलग भोजन विकल्प आजमाए जा सकते हैं। कम से कम मौद्रिक निवेश व विभिन्न चारा विकल्पों के साथ बकरियों को पालने के लिए प्रेक्टिस पैकेज विकसित किया जा सकता है। वैज्ञानिकों को विभिन्न आर्थिक लक्षणों पर विभिन्न आहार व्यवस्थाओं के प्रभाव का पता लगाना चाहिए। इससे चारा पर निवेश कम होगा और बकरी पालन से आय में वृद्धि होगी।
- सभी पशुओं में, बकरी को फील्ड कंडिशन में स्वास्थ्य देखभाल के प्रबंधन के बारे में बहुत कम ध्यान दिया गया। सरकार को नियमित रूप से कृमि मुक्ति और टीकाकरण के लिए कड़े कदम उठाने चाहिए। बकरी में मृत्यु का सबसे आम कारण एंटरोटॉक्सिमिया (ईटी) और पेस्ट डेस पेटिट्स रूमीनेन्ट्स (पीपीआर) हैं। हालांकि नियमित टीकाकरण से इन बीमारियों से आसानी से बचा जा सकता है। इसलिए, ईटी और पीपीआर के खिलाफ नियमित टीकाकरण इन भयानक बीमारियों से बकरी की आबादी की रक्षा करेगा। ग्रामीण आबादी को विभिन्न बकरी रोगों और उनकी प्रबंधन प्रक्रियाओं के बारे में सिखाया जाना चाहिए, क्योंकि दूरदराज के क्षेत्रों में पशु चिकित्सा देखभाल हर समय पर्याप्त रूप से उपलब्ध नहीं हो सकती है।

- बकरियों को खिलाने के लिए खनिज ब्लॉकों को विकसित करने की आवश्यकता है ताकि पशुओं में आवश्यक खनिजों की पूर्ति हो सके। बकरियों को बिना किसी पूरक के फ्री रेंज सिस्टम के तहत रखा जाता है। आवश्यक खनिज और विटामिन की भरपाई के लिए, फ़ीड ब्लॉक विकसित और प्रचारित किए जा सकते हैं। यह बकरी के बच्चों में उचित वृद्धि और विकास सुनिश्चित करेगा।
- बकरी को मांस के लिए पाला जाता है; इसलिए, अधिकांश युवा नर बकरियां बूचड़खाने में चली जाती हैं, जिससे प्रजनन में नर बकरियों की कमी रहती है। इसकी भरपाई के लिए बकरी पालन में कृत्रिम गर्भाधान तकनीक को लोकप्रिय बनाने की जरूरत है। प्रदेश के विभिन्न राज्यों में फ्रोजेन बकरी सीमेन सेंटर विकसित किया जाना चाहिए और पैरावेट स्टाफ को बकरी में कृत्रिम गर्भाधान करने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए ताकि चुनिंदा बक्स से वीर्य के उपयोग के माध्यम से तेजी से आनुवंशिक सुधार हो सके।

निष्कर्ष :

उत्तर पूर्वी क्षेत्र में अधिकांश आबादी मांसाहारी है, फिर भी इस क्षेत्र में बकरी पालन पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आदिवासी आबादी इस क्षेत्र में प्रमुख है और शूकर और मुर्गी पालन पारंपरिक रूप से उनके जीवन से संबंधित है। इसके परिणामस्वरूप सभी उत्तर पूर्वी राज्यों में बकरी की आबादी में गिरावट आई है। बकरी पालन के कई फायदे हैं, जैसे कि उन्हें पूर्ण चराई पर शून्य निवेश, कम बीमारी, कम उत्पादन लागत, उच्च बाजार मूल्य और कोई धार्मिक वर्जना नहीं के साथ पाला जा सकता है। मानव आबादी में वृद्धि के साथ, मांस की मांग भी लगातार बढ़ रही है। इसलिए, क्षेत्र में मांस की कमी को पूरा करने के लिए बकरी पालन में सुधार करने की आवश्यकता है। इस क्षेत्र में बकरी पालन को समर्थन देने की जबरदस्त क्षमता है क्योंकि उत्तर पूर्वी राज्यों में बायोमास प्रचुर मात्रा में है और मांस की भारी मांग है। उचित योजना और रणनीतियों के साथ, क्षेत्र में इसकी सटीक क्षमता का दोहन करने के लिए ग्रामीण आबादी के बीच बकरी पालन को शुरू करने की आवश्यकता है।

पूर्वोत्तर भारत में पाए जाने वाले महत्वपूर्ण पशुजन्य (जूनोटिक) रोग एवं उनके रोकथाम-संबंधी उपाय

*समीर दास *, ए. अरुण प्रिंस मिल्टन, संदीप घटक एवं वीरेंद्र कुमार वर्मा*

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम - 793103, मेघालय

सार:

पशुजन्य व जूनोटिक रोग वे रोग हैं जैसे रेबीज जोकि मनुष्य और कशेरुकी जानवरों के बीच स्वाभाविक रूप से संचरित होते हैं। उत्तर पूर्व भारत भी स्थापित और उभरते हुए जूनोटिक रोगों से ग्रस्त है। इस क्षेत्र के मुख्य जूनोटिक रोग रेबीज, ब्रूसेलोसिस, गोजातीय तपेदिक, बर्ड फ्लू, जापानी इंसेफेलाइटिस, कोविड-19 आदि हैं। क्षेत्र में इन रोगों के नियंत्रण और रोकथाम के लिए इन जूनोटिक रोगों की निरंतर निगरानी की आवश्यकता है और जनता को इसके बारे में शिक्षित करने की भी आवश्यकता है।

प्रस्तावना:

जूनोसिस सबसे अधिक बार होने वाली बीमारियों में से एक है और मानव जाति के लिए खतरनाक बीमारी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जूनोसिस को उन बीमारियों या संक्रमणों के रूप में परिभाषित किया है जो स्वाभाविक रूप से मनुष्यों और जानवरों के बीच संचरित होते हैं। जूनोटिक रोग जिन्हे हिंदी में 'प्राणिरुजा व पशुजन्य' रोग कहते हैं वे सभी संक्रामक रोग हैं। जो रीढ़धारी पशु एवं पक्षियों से प्राकृतिक रूप से फैलते हैं।

यह विश्वास करना सही है कि 60% मानव रोगजनक प्रकृति में जूनोटिक हैं और 800 से अधिक रोगजनकों को जूनोस के रूप में परिभाषित किया गया है। अतिरिक्त, उभरते हुए रोगजनकों में से 75% मूल रूप से जूनोटिक हैं । एक सर्वेक्षण से पता चला कि 1407 मानव रोगजनकों में से 816 जूनोटिक पाए गए हैं। जिनमें 538 जीवाणु और रिकेटसिआ संबंधी, 317 कवक, 287 हेमल्मन्थ, 208 वायरस और 57 प्रोटोजोआ प्रकृति में जानवर संक्रमण को बनाए रखते हैं और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीकों से पशु और मानव अबादी में संचरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन रोगों में विभिन्न प्रकार के संचरण तंत्र होते हैं जो सीधे संपर्क, वायु जनित, खरोंच या काटने और भोजन, रोगवाहक, पानी और पर्यावरण के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से हो सकते हैं।

उत्तर पूर्व भारत में अधिकांश मानव आबादी कृषि और संबद्ध क्षेत्र पर विशेष रूप से पशुपालन पर निर्भर है, जो जूनोज के संचरण के लिए सभी परिस्थितियों को अनुकूल बनाती है। जनसंख्या प्रवास, शहरीकरण, पशुधन व्यापार, वनों की कटाई आदि उनके संचरण को जोड़ रहे हैं। उत्तर पूर्व भारत में कुछ महत्वपूर्ण जूनोटिक रोग रेबीज, ब्रूसेलोसिस, गोजातीय तपेदिक, जापानी एन्सेफलाइटिस, साल्मोनेलोसिस, महामारी फ्लू (H1N1 and H5N1), कोविड-19 हैं। यह लेख उपरोक्त जूनोटिक रोगों और उन्हें नियंत्रित करने के लिए आवश्यक रोकथाम उपायों की एक संक्षिप्त रूपरेखा देता है।

पशुधन के प्रमुख जूनोटिक रोग और रोकथाम-संबंधी उपाय:

1. **रेबीज (Rabies):** रेबीज भारत में सबसे पुरानी और अत्यधिक घातक वायरल जूनोटिक बीमारी है जो सभी गर्म रक्त वाले कशेरुकी जीवों (कुत्तों, बिल्लियों, लोमड़ी, सियार आदि) और मनुष्यों को संक्रमित करती है। रोग लाइसावायरस के कारण होता है जो कुत्ते, बिल्ली, नेवले, लोमड़ी आदि के काटने से फैलता है और उन गुफाओं में जहां चमगादड़ जीवित रहते हैं एरोसोल संचरण द्वारा भी होता है । प्रत्येक वर्ष विश्व स्तर पर, 55,000 मनुष्य रेबीज के कारण मर जाते हैं, जिनमें से भारत में प्रति वर्ष 20,000 से अधिक मृत्यु होता है। यह मुख्य रूप से आवारा कुत्तों की बढ़ती आबादी, रोकथाम के उपायों के बारे में जानकारी की कमी और कभी-कभी वन्यजीवों से वायरस के फैलने के कारण होता है। सबसे भयानक बात यह है कि मानव की मृत्यु बहुत दर्दनाक होती है और धीरे-धीरे पक्षाघात होता है जिससे फोटोफोबिया, एरोफोबिया, हाइड्रोफोबिया और धीमी मौत होती है जिसे रोगी महसूस कर सकता है और अंतत: उसे मरना पड़ता है।

   यदि पालतू कुत्तों का नियमित टीकाकरण, पशु जन्म नियंत्रण कार्यक्रमों द्वारा आवारा कुत्तों की आबादी पर नियंत्रण और काटने के बाद मानव रेबीज टीकाकरण का पालन किया जाता है, तो यह रोग को नियंत्रण किया जा सकता है। इसके अलावा, आबादी में पूर्व-जोखिम रोगनिरोधी टीकाकरण जहां संचरण और जोखिम कर्मियों के जोखिम अधिक हैं, उस क्षेत्र में रेबीज को रोक सकते हैं। उपरोक्त के अलावा, प्राथमिक चिकित्सा के बारे में स्वास्थ्य शिक्षा, पशु चिकित्सा और चिकित्सा पेशेवरों को शामिल करके अभियान चलाकर जनता के बीच जागरूकता रोग की रोकथाम और नियंत्रण में मदद करेगी।

2. **ब्रूसेलोसिस (Brucellosis):** ब्रूसेलोसिस सबसे व्यापक रूप से फैलने वाला संक्रामक जूनोटिक रोग है जो जीनस ब्रूसेला के सदस्यों अर्थात् ब्रूसेला एबोर्टस और ब्रूसेला मेलिटेंसिस के कारण होता है। यह रोग मुख्य रूप से पशुओं को संक्रमित करता है और दूषित कच्चे दूध, डेयरी उत्पादों, भोजन, पानी के अंतर्ग्रहण के माध्यम से और कभी-कभी कंजंक्टिवा, निकट संपर्क, प्रयोगशाला दुर्घटनाओं और वायुवाहित के माध्यम से मनुष्यों में फैलता है। अधिकांश मामले पशु चिकित्सकों, पशु पालकों, किसानों, बूचड़खानों में काम करने वाले और कसाईयों में गर्भपात किए गए भ्रूणों को संभालने, भ्रूण झिल्ली, योनि तरल पदार्थ, मल और संक्रमित जानवरों के शवों के संपर्क में आने के कारण होते हैं। जानवरों में, यह रोग गर्भावस्था के तीसरे तिमाही में गर्भपात, प्लेसेंटाइटिस और टेस्टिकुलर असामान्यताओं का कारण बनता है। दूसरी ओर, मनुष्यों में यह विशिष्ट लहरदार बुखार, ठंड लगना, अत्यधिक पसीना, ऑर्काइटिस, लिम्फैडेनोपैथी और गठिया पैदा करता है। भारत में गोजातीय आबादी के बीच लगभग 12% में कुल व्यापकता का अनुमान है। ब्रूसेलोसिस को रोकने के मुख्य तरीके दूध और दुग्ध उत्पादों के उत्पादन में स्वच्छता में सुधार, पशुओं में टीकाकरण, झुंडों में रिएक्टरों की जांच और निष्कासन, गर्भपात किए गए भ्रूणों और संक्रमित शवों का स्वच्छ संचालन और निपटान हैं।

3. **गोजातीय तपेदिक (Bovine Tuberculosis):** गोजातीय क्षय (तपेदिक) रोग एक प्राचीन बीमारी है जिसे 4000 ईसा पूर्व से जाना जाता है। यह माइक्रोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस बैसिलस कॉम्प्लेक्स (एमटीबीसी) के सदस्यों अर्थात् माइक्रोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस और माइक्रोबैक्टीरियम बोविस के कारण होता है। इन दोनों में, माइक्रोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस मानव रोगज़नक़ है और माइकोबैक्टीरियम बोविस जूनोटिक रोगज़नक़ है जो गोजातीय तपेदिक का कारण बनता है। गोजातीय तपेदिक मुख्य रूप से मवेशियों का एक पुराना जीवाणु जूनोटिक रोग है जो दूषित कच्चे दूध के अंतर्ग्रहण और संक्रामक छोटी बूंदों के नाभिक के माध्यम से मनुष्यों में फैलता है। जानवरों में यह श्वसन स्राव, बंद संपर्क, मूत्र, दूध, योनि स्राव और वीर्य के माध्यम से फैलता है। प्रारंभ में लगभग 4-6 सप्ताह के लिए यह रोग जानवरों और मनुष्यों दोनों में स्पर्शोन्मुख है। लेकिन धीरे-धीरे वजन घटाने, खांसी, थूक उत्पादन और ट्यूबरकुलर गठन जैसे लक्षण विकसित होते हैं। यह रोग बच्चों में लिम्फैडेनाइटिस (मुख्य रूप से ग्रीवा लिम्फ नोड्स) मध्यम और वृद्ध लोगों में फुफ्फुसीय तपेदिक का कारण बनता है। भारतीय मवेशियों की आबादी में गोजातीय तपेदिक का प्रसार 7.3% होने का अनुमान है, जिसका अर्थ है कि भारत में अनुमानित 21.8 मिलियन मवेशी संक्रमित हैं। इस संभावित जूनोटिक रोग को रोकने के लिए, दूध विपणन से पहले पाश्चराइजेशन, बूचड़खानों में शवों की उचित जांच, मनुष्यों और जानवरों की नियमित निगरानी जैसे उपायों को अपनाना आवश्यक है।

4. **जापानी इंसेफेलाइटिस (Japanese encephalitis):** जापानी इंसेफेलाइटिस मच्छर जनित वायरल जूनोटिक रोग है। ग्रामीण, अर्ध-शहरी और कृषि क्षेत्रों से अधिकांश मामलों के साथ इस बीमारी में महामारी की उच्च संभावना है, जहां मच्छर (मुख्य रूप से क्यूलेक्स ट्रिटेनिओरिन्चस) पनपते हैं और धान के खेतों और आवारा शूकर घूमने वाले क्षेत्रों में रहते हैं। इसके अलावा, भारत में बीमारी का बोझ समशीतोष्ण जलवायु के कारण अधिक है, क्योंकि अगस्त-अक्टूबर में भारी वर्षा और बाढ़ के कारण रोगवाहक के आबादी में वृद्धि के कारण घटनाएं चरम पर पहुंच जाती हैं। मानव, मवेशी, घोड़े मृत अंत मेजबान होने के कारण मच्छर युक्त वायरस के काटने से संक्रमण प्राप्त करते हैं जो प्रवर्धक मेजबान (सूअर) या जलाशयों के मेजबान (जंगली पक्षी) से उठाया जाता है। मनुष्यों में रोग की शुरुआत तेजी से होती है और आमतौर पर फ्लू जैसी बीमारी, तेज बुखार, ठंड लगना, धीरे-धीरे मस्तिष्क और मस्तिष्कावरणीय संक्रमण जैसे गर्दन में अकड़न, आक्षेप (विशेषकर बच्चों में) के रूप में शुरू होता है और अंत में कोमा में जाता है। कई आजीवन न्यूरोलॉजिकल दोषों से पीड़ित हो जाते हैं जैसे बहरापन, मोटर विकृति को सीक्वेल के रूप में देखा जाता है। दूसरी ओर, मवेशियों और घोड़ों में यह घातक एन्सेफलाइटिस का कारण बनता है। स्थानीय प्राधिकरण को जापानी इंसेफेलाइटिस (जेई) की घटनाओं की त्वरित रिपोर्टिंग, जेई प्रवण क्षेत्रों में सीरो-निगरानी, संवेदनशील आबादी का टीकाकरण, मच्छरों के खिलाफ एंटी-लार्वा और वयस्क-विरोधी उपायों का पालन करके संचरण में रुकावट, स्वास्थ्य शिक्षा बीमारी के नियंत्रण में मददगार हैं।

5. **सलमोनेलोसिज़ (Salmonellosis):** साल्मोनेलोसिस एक वैश्विक समस्या है क्योंकि इसमें जानवरों और मनुष्यों दोनों को प्रभावित करने वाले खाद्य जनित संक्रमणों के एक जटिल समूह को शामिल किया गया है। जूनोटिक साल्मोनेलोसिस जो एक बढ़ी हुई प्रवृत्ति दिखा रहा है, गैर-टाइफाइड, सेरोटाइप साल्मोनेला एंटरिटिडिस और साल्मोनेला टाइफिम्यूरियम के कारण होता है। दूषित भोजन और पानी, मांस या बिना पाश्चुरीकृत दूध और पर्यावरण प्रदूषण (जल स्रोत और सीवेज) के अंतर्ग्रहण से यह रोग मल-मौखिक मार्ग से मनुष्यों में फैलता है। संक्रमण की गंभीरता मनुष्यों और जानवरों में संक्रमित खुराक के स्तर पर निर्भर करती है जो निर्जलीकरण, उल्टी, बुखार, गंभीर पेट दर्द और दस्त का कारण बनता है। जूनोटिक साल्मोनेलोसिस की रोकथाम कृषि स्तर से लेकर खाद्य श्रृंखला के सभी तत्वों तक जीवित जानवरों, पशु उत्पादों और खाद्य प्रसंस्करण से उपभोग तक उचित स्वच्छता बनाए रखने से प्राप्त की जा सकती है।

6. **सर्वव्यापी महामारी इन्फ्लूएंज़ा (Pandemic Influenza):** इन्फ्लुएंजा पक्षियों और स्तनधारियों का एक तीव्र वायरल संक्रामक रोग है जो इन्फ्लुएंजा व वायरस के सीरोटाइप के कारण होता है जो परिवार ऑर्थोमेक्सोविरिडे से संबंधित है। एच1एन1 (स्पेनिश फ्लू और स्वाइन फ्लू) और एच5एन1 (बर्ड फ्लू) महामारी से होने वाली मानव मौतों के लिए जिम्मेदार होने की पुष्टि की गई है। वायरस प्रजाति-विशिष्ट मेजबानों जैसे जंगली और घरेलू पक्षियों, सूअरों में बनाए रखा जाता है और मुख्य रूप से खांसने और छींकने से उत्पन्न बूंदों के माध्यम से मनुष्यों को प्रेषित किया जाता है, विशेष रूप से भीड़-भाड़ वाले स्थानों में या संक्रमित जानवरों की आबादी के सीधे संपर्क में। इसके अलावा, नए इन्फ्लूएंजा वायरस का उद्भव मुख्य रूप से एंटीजेनिक भिन्नता, उत्परिवर्तन या पुनर्मूल्यांकन के कारण होता है। मनुष्यों में यह तीव्र श्वसन पथ के संक्रमण का कारण बनता है जिसमें बुखार 1-5 दिनों तक रहता है, सिरदर्द, खांसी, श्वसन संकट जो अंततः मृत्यु में समाप्त होता है। दूसरी ओर, जानवरों में श्लेष्मा नाक से स्राव होता है, खाँसी के बाद ज्यादातर मामलों में तेजी से ठीक हो जाता है। इन्फ्लूएंजा प्रकार की महामारी को रोकने और नियंत्रित करने के लिए, संदिग्ध फ्लू के प्रकोप के दौरान सख्त जैव-सुरक्षा उपायों के रखरखाव के लिए उपायों को निर्देशित किया जाना चाहिए, जिसमें पक्षियों और सूअरों की सामूहिक हत्या, कीटाणु शोधन और स्वच्छता और खेतों के बीच प्रतिबंधित आंदोलन शामिल हैं। उपरोक्त के अलावा, व्यक्तिगत स्वच्छता, खाद्य स्वच्छता और मानव सहित सभी आयात और निर्यात के संगरोध का पालन करके नियंत्रण किया जा सकता है।

7. **कोरोना /कोविड-19:** कोविड-19 एक संचारी वायरल जूनोटिक रोग है, जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कोरोना वायरस के नए स्ट्रेन सीवियर एक्यूट रेस्पिरेटरी सिंड्रोम- कोरोना वायरस 2 (SARS-Cov2) के कारण होता है। दुनिया भर में यह तीसरा जूनोटिक कोरोना वायरस (SARS, MERS के बाद) है जिसमें उच्च महामारी क्षमता है। जुलाई 2021 तक यह 212 (संयुक्त राष्ट्र रिपोर्टिंग) देशों में फैल गया है। जिससे 41 लाख से ज्यादा मानव मृत्यु हुई और वैश्विक स्तर पर 19 करोड़ मामले सामने आए। भारत में यह 4.11 लाख मौत और 3 करोड़ मामलों के लिए जिम्मेदार था। यह कम ऊष्मायन अवधि के कारण अपनी सहजता और प्रसार में बहुत अनूठा है, भले ही जानवरों से मानव आबादी में वायरस की सटीक गति निर्धारित नहीं है, लेकिन वुहान लाइव मार्केट में पर्यावरणीय नमूनों और जानवरों पर कई अध्ययन SARS-Cov2 के लिए सकारात्मक पाए गए। मानव से मानव संचरण श्वसन बूंदों या फोमाइट्स के साथ आंखों, मुंह या नाक के श्लेष्म झिल्ली के सीधे संपर्क या अप्रत्यक्ष संपर्क के माध्यम से प्रतीत होता है। मनुष्यों में सबसे आम लक्षण गले में खराश, बुखार, सूखी खांसी और नाक बहना है, लेकिन कुछ मामलों में कम ऑक्सीजन संतृप्ति के साथ तेजी से गिरावट और तीव्र श्वसन संकट अंततः मृत्यु का कारण होता है। व्यक्तिगत स्वच्छता के उपाय जैसे हाथ धोना, उपयुक्त मास्क का उपयोग, सार्स रोगियों का प्रभावी अलगाव, सार्स वाले व्यक्तियों की शीघ्र पहचान, पृथकीकरण और टीकाकरण आदि से नियंत्रण कर सकते हैं।

8. टोक्सोप्लाज्मोसिस (Toxoplasmosis): टोक्सोप्लाज्मोसिस बिल्ली के मल और बिल्ली के मल से दूषित भोजन में पाए जाने वाले एक सामान्य परजीवी *टोक्सोप्लाज्मा गोंडी* के संक्रमण के परिणाम स्वरूप होता है। यह गर्भवती महिलाओं और कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली वाले लोगों के लिए गंभीर जटिलताएं पैदा कर सकता है। गर्भवती महिलाओं में टोक्सोप्लाज़मोसिज़ की जांच के लिए परीक्षण TORCH (टोक्सोप्लाज़मोसिज़, रूबेला, साइटोमेगालोवायरस और हर्पीज़ सिम्प्लेक्स वायरस) नाम से एक नियमित परीक्षण है। उत्तर पूर्वी राज्यों में जहां बिल्ली को पालतू जानवर के रूप में पाला जाता है, वहां गर्भावस्था को प्रभावित करने वाले और आंखों के संक्रमण के लिए भी मानव में टोक्सोप्लाज्मा के मामलों की एक महत्वपूर्ण संख्या है। इस बीमारी की रोकथाम में विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं द्वारा नंगे हाथ बागवानी से बचना और हाथों की उचित स्वच्छता का पालन करना शामिल है। कच्चा मांस खाने और अनुपचारित पानी पीने से बचें। सलाद को खाने के लिए अच्छी तरह से धोना चाहिए।

निष्कर्ष: जूनोटिक रोग हमेशा मनुष्य के लिए खतरा होते हैं क्योंकि जानवर, मनुष्य और पर्यावरण हमेशा एक दूसरे पर निर्भर होते हैं और कुछ स्थानिक और कई उभरती हुई जूनोटिक बीमारियां हैं जिसका सामना उत्तर पूर्व क्षेत्र सहित भारत देश कर रहा है। क्षेत्र में एक स्वास्थ्य दृष्टिकोण में इन जूनोटिक रोगों की निगरानी जारी रखना और चिकित्सा, पशु चिकित्सा, वन्यजीव और पारिस्थितिकीविदों के समन्वय के साथ मिलकर काम करना आवश्यक है ताकि क्षेत्र में इन जूनोटिक रोगों को नियंत्रित किया जा सके।

भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में मसाला उत्पादन में आधुनिक विकास

वीरेंद्र कुमार वर्मा एवं एम. बिलाशिनी देवी

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम (बड़ापानी), मेघालय -793103

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र, (अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा) 21.5 से 29.5 डिग्री उत्तर अक्षांश और 85.5 से 97.5 डिग्री पूर्व देशांतर के बीच स्थित है। भारत के उत्तर पूर्वी क्षेत्र में शुद्ध और सकल खेती का क्षेत्र क्रमश: 4.48 और 6.21 मिलियन हेक्टेयर है। हालाँकि, शुद्ध सिंचित क्षेत्र लगभग 0.52 मिलियन हेक्टेयर (2010-11) है। इस क्षेत्र की जनसंख्या देश की कुल आबादी का 3.07% (> 45 मिलियन) है। कृषि और संबद्ध क्षेत्रों में, बागवानी किसानों की पोषण और आजीविका में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विविध जलवायु और जैव विविधता के हॉटस्पॉट होने के कारण, इस क्षेत्र में फसलों की प्रजातियों की एक विस्तृत श्रृंखला है। बागवानी फसलों के तहत, मसाले घरेलू खपत के साथ-साथ व्यावसायिक रूप से बाजारों के लिए उगाए जाते हैं। इस क्षेत्र के प्रमुख मसाले अदरख, हल्दी, मिर्च (लाल मिर्च, बर्डस आई चिली एवं राजा-मिर्च), धनिया, बड़ी इलायची, काली मिर्च, तेज पत्ता, दालचीनी, स्टार अनीस, मैक्सिकन धनिया (नागा धनिया) आदि हैं । पूर्वोत्तर क्षेत्र में मसालों का कुल क्षेत्रफल और उत्पादन 2,18,700 हेक्टेयर और 7,50,500 मीट्रिक टन है, और देश के कुल क्षेत्रफल और उत्पादन में क्रमश: 5.64 और 9.24% योगदान है। पिछले पांच वर्षों में क्षेत्र और उत्पादन में क्रमश: 8.0% और 16.85% तक वृद्धि हुई। संपूर्ण मसालों के उत्पादन में अग्रणी राज्य असम के बाद मिजोरम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश और सिक्किम (चित्र 1) हैं। मसालों में, अधिकतम क्षेत्र अदरख के अंतर्गत आता है और उसके बाद

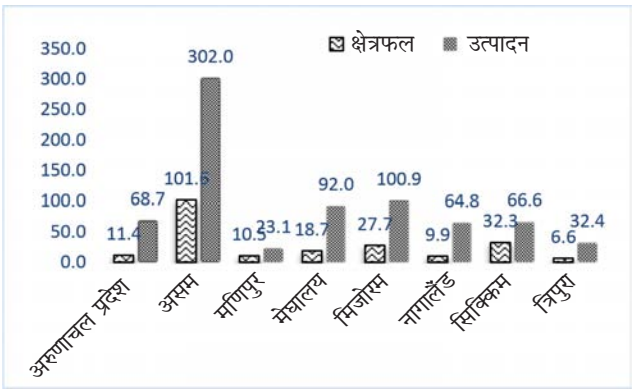

चित्र 1: पूर्वोत्तर भारत के प्रमुख मसाला उत्पादक राज्य

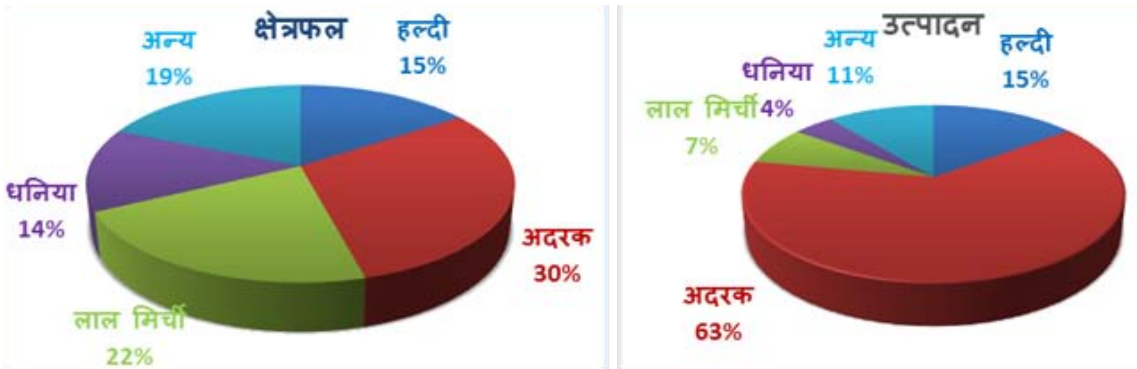

चित्र 2. पूर्वोत्तर भारत में विभिन्न मसालों का क्षेत्र और उत्पादन में प्रतिशत हिस्सा

हल्दी और मिर्च हैं (चित्र 2)। उत्तर पूर्वी राज्यों का देश के कुल क्षेत्रफल और अदरख उत्पादन में योगदान क्रमश: 41.45 और 42.43% है। उत्तर पूर्वी राज्यों में अदरख के प्रमुख उत्पादक राज्य असम, मेघालय, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश (चित्र 3) हैं। विशेष रूप से, हल्दी में प्रमुख उत्पादक राज्य असम और मेघालय (चित्र 4) के बाद मिज़ोरम हैं। इसी तरह, मिर्च उत्पादन के लिए अग्रणी राज्य असम के बाद मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश और त्रिपुरा (चित्र 5) हैं। इसके अलावा, सिक्किम बड़ी इलायची का प्रमुख उत्पादक राज्य है। बर्डस आई चिली पूरे उत्तरपूर्वी राज्यों में उगाई जाती है, लेकिन मिजोरम क्षेत्र और उत्पादन में अग्रणी है। अरुणाचल

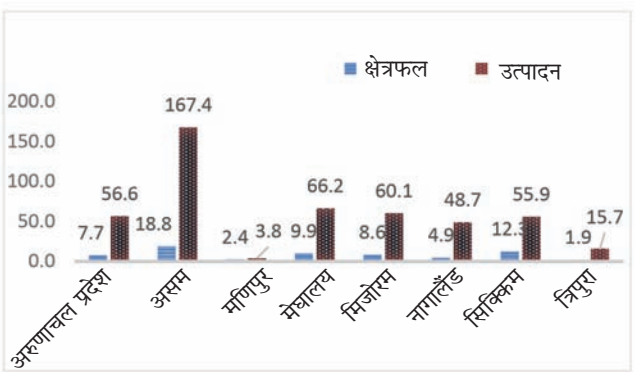

चित्र 3. पूर्वोत्तर भारत के प्रमुख अदरख उत्पादक राज्य

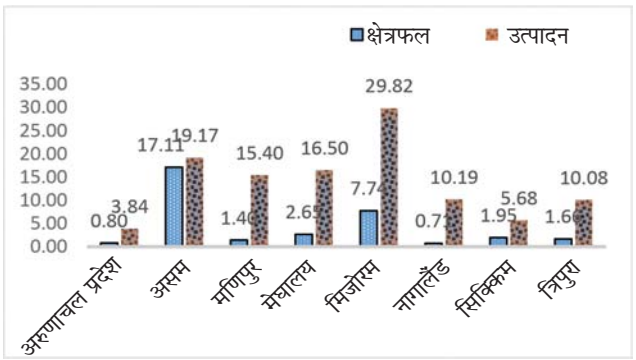

चित्र 4. पूर्वोत्तर भारत के प्रमुख हल्दी उत्पादक राज्य

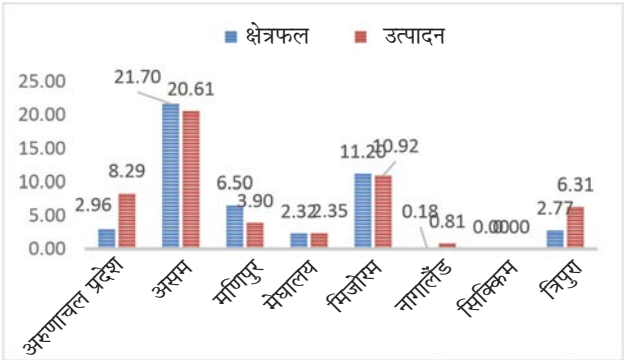

चित्र 5. पूर्वोत्तर भारत के प्रमुख सूखी मिर्च उत्पादक राज्य

प्रदेश स्टार एनीज़ के उत्पादन में अग्रणी राज्य है। हालांकि उत्तरपूर्वी राज्यों में मसालों का बड़े क्षेत्र पर कब्जा है, लेकिन रोपण सामग्री की खराब गुणवत्ता और कई जैविक (अदरख के प्रकंद सड़न, हल्दी की पत्ती धब्बा) और अजैविक तनाव (लीचिंग द्वारा पोषक तत्वों की कमी), खराब फसल प्रबंधन आदि के कारण उत्पादकता बहुत कम है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम (बड़ापानी), मेघालय ने फसल के उत्पादन और उत्पादकता में सुधार के साथ-साथ मूल्य संवर्धन के लिए कई पहल की हैं। उनमें से प्रमुख उपलब्धियाँ नीचे वर्णित हैं:

जननद्रव्य प्रबंधन एवं फसल सुधार:

चित्र 6. हल्दी की किस्म मेघा हल्दी -1

कुल हल्दी के 43 और अदरख के 32 जननद्रव्य को एकत्र किया गया है और राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (एनबीपीजीआर), नई दिल्ली को दस्तावेज प्रस्तुत देशीय संग्रह संख्या प्राप्त किया गया और सभी जननद्रव्य को संस्थान में संरक्षित किया गया है। हल्दी जननद्रव्य में, मूल्यांकन परीक्षण के तहत IC-586763, IC-586756, IC-586758 और IC-586753 उच्च उपज वाले पाए गए (35.0 टन/ हेक्टेयर)। हालाँकि, IC-586749, IC-586750, IC-586752, IC-586762 और IC-586769 में उच्चतम करक्यूमिन सामग्री (> 7.0%) दर्ज की गई। इसके अलावा, उच्चतम शुष्क पदार्थ रिकवरी (22.25%) और ओलेओरेसिन सामग्री (23.70%) क्रमश: IC -586777 और IC -586764 में दर्ज की गई थी। स्थानीय जननद्रव्य 'लाकडांग' को करक्यूमिन (7.7%) की सामग्री के लिए बेहतर पाया गया। सबसे अधिक ताज़ी प्रकंद उपज BSR - 2 (672.89 ग्राम) से दर्ज की गई, इसके बाद रोमा, नरेंद्र हल्दी -1, सुरंजना और मेघा हल्दी -1 हैं। हालाँकि, सूखे प्रकंद के लिए उच्च उपज वाले परिग्रहणों की पहचान BSR - 2 (12.39 टन/ हेक्टेयर) और मेघा हल्दी -1 (12.12 टन/ हेक्टेयर) के रूप में की गई (चित्र 6)। शुष्क पदार्थ की रिकवरी रश्मि (23.79%) में सबसे अधिक थी, उसके बाद केदाराम (22.67%) और अल्लेप्पी सुप्रीम (22.33%) जबकि सबसे कम रिकवरी (14.33%) राजेंद्र सोनिया में प्रेक्षित की गई। मेघा हल्दी -1 (7.2%) के बाद सबसे अधिक करक्यूमिन सामग्री प्रतिभा (6.9%) और रोमा (6.8%) में दर्ज की गई।

चित्र 7. अदरख की किस्म नदिया

इसी तरह, अदरख के मामले में, IC-584338 से सबसे अधिक उपज (21.95 टन / हेक्टेयर) दर्ज की गई। IC-584348 (7.85%) में क्रुड फाइबर सबसे अधिक पाया गया। शुष्क पदार्थ की मात्रा 27.16% और ओलेओरेसिन की मात्रा 8.4% IC-584353 में सर्वाधिक पाई गई। स्थानीय जननद्रव्य मेघालय लोकल को जिंजरोल (1.71%) और तेल (2.10%) सामग्री के लिए बेहतर पाया गया। लोकप्रिय जननद्रव्य, नदिया में सबसे अधिक उपज (28.50 टन / हेक्टेयर) दर्ज की गई (चित्र 7), जिसके बाद जमैका (22. 25 टन / हेक्टेयर) थी। उच्चतम शुष्क पदार्थ रिकवरी V3S1-8 (25.20%) में दर्ज की गई थी। ओलेओरेसिन की मात्रा सुराची में सबसे अधिक (9.36%) और सबसे कम महिमा (4.39%) में दर्ज की गई। उच्चतम वाष्पशील तेल की मात्रा 2.65% महिमा में और सबसे कम (1.73%) हिमगिरी में दर्ज की गई।

पोषक तत्व प्रबंधन:

उत्तर पूर्वी क्षेत्र में अदरख और हल्दी दोनों को झूम / शिफ्टिंग खेती में एक जैविक फसल के रूप में उगाया जाता है। जैविक प्रथाओं का उपयोग करके हल्दी (20.13 टन / हेक्टेयर) और अदरख (19.2 टन / हेक्टेयर) की सबसे अधिक पैदावार क्रमश: मेघा हल्दी -1 और नादिया में दर्ज की गई। जैविक उत्पादन के लिए सिफारिश की प्रथा में बीज प्रकंदों को *Trichoderma harzianum* (5 ग्राम प्रति किलोग्राम पर) के साथ उपचार और FYM (7.5 टन / हेक्टेयर) + वर्मीकम्पोस्ट (2.0 टन / हेक्टेयर) + नीम केक (250 किलोग्राम / हेक्टेयर) *PSB* (फॉस्फोरस सॉल्युबलाइजिंग बैक्टीरिया) और *Azospirillum* 10 किलोग्राम की दर से संवर्धित खाद का मृदा अनुप्रयोग। इसी तरह, घाटियों में उठी हुई क्यारियों के तहत अदरख की उच्चतम उपज (11.82 टन / हेक्टेयर) कुल आवर्ती नाइट्रोजन (120 किग्रा / हेक्टेयर) का जैविक खाद के स्रोतों *FYM* और वर्मीकम्पोस्ट 50 % प्रत्येक, से प्राप्त किया गया।

फसल सुरक्षा:

पत्ती धब्बा रोग के खिलाफ जननद्रव्य का मूल्यांकन: हल्दी के 35 विविध जननद्रव्य का मूल्यांकन तफ़रीना पत्ती धब्बा (चित्र 8) के खिलाफ किया गया । जीनोटाइप लकडोंग, देहरादून लोकल, कुचीपुड़ी, VK -17, दुग्गिरिला रेड, मधुकर, मणिपुरी नंबर -1, प्रतिभा, केदाराम, MLT -57 और SKM- 61 प्रतिरोधी पाए गए।

चित्र 8. हल्दी में टफ़रीना पत्ती धब्बा रोग

अदरख में प्रकंद सड़न का प्रबंधन:

भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में सड़न रोग अदरख के लिए एक प्रमुख उत्पादन बाधा है। पूर्वोत्तर क्षेत्र के नागालैंड में 92 %, मेघालय (57-100%), मिजोरम (9.6 - 35 %), सिक्किम (15 - 35 %) और मणिपुर (0 - 25 %) की बीमारी की व्यापकता अभिलिखित है। यद्यपि इस क्षेत्र में विविध आनुवंशिक सामग्रियां हैं, लेकिन नादिया के अलावा कोई विशिष्ट किस्म नहीं है जो प्रकंद सड़न के लिए प्रतिरोधी / सहिष्णु हो। जैविक उत्पादन प्रणाली के तहत, फसल चक्र, उचित जल निकासी और बीज प्रकंद (ट्राइकोडर्मा बायो-कंट्रोल एजेंट 5 ग्राम / प्रति किलो ग्राम प्रकंद की दर) के साथ 30 मिनट के लिए उपचार तथा बुवाई से 10 -15 दिन पहले ट्राइकोडर्मा बायो-कंट्रोल एजेंट 50 किलो ग्राम FYM के साथ मिश्रित करके मिट्टी में अनुप्रयोग नियंत्रण करने के लिए प्रभावी पाया गया। इसके अतिरिक्त 30 मिनट के लिए 47 डिग्री सेल्सियस पर गर्म पानी में बीज प्रकंद उपचार और 2.5 किलोग्राम / 50 किग्रा FYM / हेक्टेयर में *Trichoderma harzianum* की मिट्टी के अनुप्रयोग, इसके बाद पौधों को कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (0.3%) से तीन बार भिगोना प्रभावी पाया गया, जो अदरख पर प्रकंद सड़ांध (19.29 %) को सीमित करने के अलावा विकास और उपज में सुधार करने में महत्वपूर्ण पाया गया।

अकार्बनिक प्रथाओं के तहत 30 मिनट के लिए डाइथेन एम - 45 (2.5 ग्राम / लीटर) के साथ बीज प्रकंद का उपचार किया जाता है और बीमारियों को नियंत्रित करने के लिए मिट्टी चढाने से पहले भिगोना प्रभावी पाया गया है।

प्रसंस्करण और मूल्य संवर्धन:

कच्चे अदरख का संरक्षण: गुणों में कोई गिरावट के बिना कच्चे अदरख को स्लाइस के रूप में 8-10 महीनों के लिए नमकीन घोल (9%) जिसमें 2% साइट्रिक एसिड होता है में संरक्षित किया जा सकता है।

त्वरित अदरख कैंडी: कच्ची अदरख को बोने के 180-210 दिन बाद खुदाई करें। सतह से गंदगी और अन्य अवांछनीय कणों को हटाने और संक्रमण पैदा करने वाले सूक्ष्म जीवाणु भार को कम करने के लिए एक समान राइजोम का चयन करें और साफ पानी से अच्छी तरह से धोएं। कुछ घंटों के लिए प्रकंद को कमरे में सुखाएं और हल्के से छीलें। चाकू की मदद से 10-15 मिलीमीटर मोटाई के स्लाइस बनाएं। 25 -30 मिनट के लिए उबलते पानी में स्लाइस को ब्लांच करें, क्रमश: 40ए ब्रिक्स और 75ए ब्रिक्स 2.0% साइट्रिक एसिड युक्त चीनी के घोल में 95^{0}C पर 1 और 2 घंटे के लिए क्रमश: डुबोए और रिटेंशन का समय पूरा होते ही चाशनी से स्लाइस को बाहर निकाल लें और ट्रे ड्रॉयर में सामग्री को 60^{0}C पर 1 घंटे के लिए सुखाएं। सुखाने के बाद स्लाइस को या तो ठंडा करके उपयुक्त पैकेजिंग सामग्री में कर सकते है (चित्र 9) या चीनी पाउडर और कंटेनरों में पैक कर सकते है।

चित्र 9. त्वरित अदरख कैंडी

तकनीक का हस्तांतरण:

हल्दी: उच्च उपज वाली हल्दी किस्म मेघा हल्दी -1 को लोकप्रिय बनाने के लिए, किसान भागीदारी के तहत मेघालय के री-भोई जिले में फ्रंट लाइन प्रदर्शन आयोजित किया गया। कुल 7.5 हेक्टेयर क्षेत्र को कवर करते हुए 122 किसानों से जुड़े नौ गांवों के कुल 11 स्वयं सहायता समूहों ने प्रदर्शन में भाग लिया। फ्रंट लाइन प्रदर्शन से, 7.55 हेक्टेयर क्षेत्र में 156.31 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से 1152.29 क्विंटल ताजी हल्दी का उत्पादन किया गया। वैज्ञानिक प्रबंधन प्रथाओं को अपनाने के साथ स्वयं सहायता समूहों द्वारा उच्च लाभ: लागत अनुपात (2.52) के साथ आकर्षक सकल प्रतिफल (₹ 2,34,460 / हेक्टेयर) और शुद्ध प्रतिफल (₹ 1,41,604 / हेक्टेयर) दर्ज किए गए। तकनीकी हस्तक्षेप (मेघा हल्दी -1) के साथ किसान भागीदारी के माध्यम से न केवल हल्दी का उत्पादन बढ़ा, बल्कि जनजातीय किसानों के बीच रोजगार और उद्यमिता भी उत्पन्न किया गया।

अदरख: जैविक उत्पादन प्रणाली के साथ किसानों के क्षेत्र में उच्च उपज वाली किस्म 'नादिया' का उपयोग करके अदरख पर एक क्षेत्र प्रदर्शन किया गया था। इसके लिए 15 किसानों के एक समूह को री-भोई जिले, मेघालय के तिरसो पायलुन गाँव के एक स्वयं सहायता 'किसान समूह कल्याण सोसायटी' से चुना गया था। प्रदर्शन 0.5 हेक्टेयर क्षेत्र में बीज, तकनीकी सहायता जैसे इनपुट समर्थन प्रणाली के साथ दिया गया था। उचित अंतराल पर फसलें लगाई गईं और उपज और संबंधित लक्षणों के लिए अवलोकन किया गया। स्वयं सहायता समूहों के अध्यक्ष इओहिलुत लिंगदोह ने हमें विभिन्न प्रकार के उत्पादन में अंतर के बारे में बताया। परंपरागत रूप से उगाई जाने वाली लोकल किस्म (108.0 क्विंटल) से अधिक उपज 141.75 क्विंटल प्रति हेक्टेयर (254.0 ग्राम / पौधा) नदिया की खेती से प्राप्त किया। पैदावार में वृद्धि स्थानीय किस्म पर लगभग 31.25% थी। किसानों ने बड़े पैमाने पर इस किस्म को अपनाया, लेकिन मुख्य समस्या गुणवत्ता युक्त रोपण सामग्री की उपलब्धता पाए गए।

अदरख में प्रकंद सड़न के प्रबंधन पर प्रदर्शन: किसानों के खेत में प्रकंद सड़न की गंभीर घटना (30-70%) देखी गई। रोग को नियंत्रित करने के लिए डाइथेन एम - 45 (2.5 ग्राम / लीटर पानी में 30 मिनट के लिए) के साथ बीज प्रकंद उपचार के लिए प्रदर्शन री-भोई में मावलांग गाँव के धीरन मुखीम और मौहाटी गाँव के चेस मेई के खेत में किया गया। उपचारित क्षेत्र में प्रकंद सड़न (5-10%) की घटना कम से कम पायी गयी।

References:

Anandaraj, M., Prasath, D., Kandiannan, K., et al. (2014). Genotype by environment interaction effects on yield and curcumin in turmeric (*Curcuma longa* L.). *Industrial Crops and Products*.53:358–364.

Anonymous (2018) Horticulture Statistics at a Glance-2018. Department of Agriculture, Cooperation & Farmers' Welfare, Ministry of Agriculture & Farmers Welfare, Government of India. pp 458.

Daiho, L. and Upadhyay, D.N. (2004) Screening of ginger genotypes from North-Eastern States against rhizome rot of ginger In: National Agricultural Technology Project Final Report (2001–2004), Nagaland University, Nagaland, 14.

Das, A., Layek, J., Babu, S., Kumar, M., Yadav, G.S., Patel, D.P., Ramakrishna, G.I., Lal, R., Buragohain, J. (2020) Influence of land configuration and organic sources of nutrient supply on productivity and quality of ginger (*Zingiber officinale* Rosc.) grown in Eastern Himalayas, India. *Environmental Sustainability*. https://doi.org/10.1007/s42398-020-00098-x.

Deshmukh, N.A., Patel, R.K., Deka, B.C., Verma, V.K., Jha, A.K., Pathaw, J.E. (2013) Self-help groups boost turmeric production in Meghalaya – A success story. *HortFlora Research Spectrum* 2(3): 230-234.

Dohroo, N.P., Kansal, S., Ahluwalia, N. (2012) Status of soft rot of ginger (*Zingiber officinale* Roscoe). Technical Bulletin, Department of Vegetable Science, Dr. Y.S. Parmar University of Horticulture and Forestry, Nuani 173 320, Solan, India, 22.

Nath, A., Deka, B.C., Jha, A.K., Paul, D., and Misra, L.K. (2013) Effect of slice thickness and blanching time on different quality attributes of instant ginger candy. *Journal of Food Science and Technology* 50(1):197-202.

Sanwal, S.K., Yadav, R.K., Singh, P.K., Buragohain, J., Verma, M.R. (2010). Gingerol content of different genotypes of ginger (*Zingiber officinale*). *Indian Journal of Agricultural Sciences* 80 (3): 258–60.

Singh, A.R., Dutta, S. K., Boopathi, T., Singh, B., Lungmuana, Saha, S. and Dayal, V. (2018) Integrated management of soft rot of ginger in Northeastern hills of India. *Indian Phytopathology* **71,** 83–89 (2018). https://doi.org/10.1007/s42360-018-0001-7.

Verma, V.K., Patel, R.K., Deshmukh, N.A., Jha, A.K., Ngachan, S.V., Singha, A.K., and Deka, B.C. (2019). Response of ginger and turmeric to organic versus traditional production practices at different elevations under humid subtropics of north-eastern India. *Industrial Crops and Products* 136: 21–27.

बकरियों में परजीवियों से होने वाले रोग एवं इसका निदान

राकेश कुमार[1], महक सिंह[1], मीणा दास[1], एन.उत्तम सिंह[1], अजय कुमार यादव[2], राम दयाल शर्मा[1] एवं वी. के. मिश्रा[1]

[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद. उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमरोई रोड, उमियाम -793103, मेघालय

[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद. राष्ट्रीय शूकर अनुसंधान केंद्र, रानी, गुवाहाटी -781131, असम

बकरियों को 'गरीब आदमी की गाय' के रूप में जाना जाता है, क्योंकि इसे कम खर्च में पाला जा सकता है। बकरियां प्रतिकूल जलवायु और खराब प्रबंधन परिस्थितियों के तहत भी बहुत अच्छा उत्पादन करती है। बकरियों की खास विशेषता यह है कि जिन पत्तियों और घांसो को दूसरे पशु नहीं खाते हैं, ये उनपर भी आसानी से खाकर जिन्दा रह सकती है। बकरी से हम अच्छी गुणवत्ता के दूध, मांस, त्वचा, पश्मीना, और मोहेर आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। बकरी का मांस जो की चेवोन के नाम से जाना जाता है, दुनिया भर में सबसे पसंदीदा और व्यापक रूप से खाया जाने वाला मांस की श्रेणी में आता है, क्योंकि इसमें कोई सामाजिक वर्जना नहीं होता है। अन्य पशुओं की तरह बकरियाँ भी विभिन्न तरह के बिमारियों से ग्रसित होती रहती हैं। बकरियां मुख्यत: खुरपका एवं मुँहपका रोग, पी.पी.आर, बकरी प्लेग, गलाघोटू रोग एवं विभिन्न प्रकार के परजीवी रोग से ग्रसित होती है। इस लेख में मुख्य बाह्य परजीवी (जूँ, किलनी, इत्यादि), अन्त: परजीवी (फीता कृमि, गोल कृमि, इत्यादि) एवं प्रोटाजोआ से होने वाले रोग के लक्षण, निदान एवं उपचार के बारे में वर्णित किया गया है।

फीता कृमि से होने वाले रोग एवं उपचार:-

- बकरियों में मुख्यत: मोनेजिया नामक फीताकृमि पाया जाता है, जो की बड़े आकार के होते हैं और मेमनों को अधिक संक्रमित करता है।
- इसका मुख्य लक्षण बकरियों में दस्त होना तथा उनकी दुग्ध एवं मांस उत्पादन क्षमता कम हो जाता है। अगर समुचित उपचार नहीं मिले तो बकरियों को मरने की संभावना बढ़ जाती है।

- ये कृमि बकरियों के मल में पके चावल के दाने जैसा प्रतीत होता है।
- इस फीताकृमियों से बचाव हेतु सर्वोत्तम उपाय यह है कि चारागाह को अच्छी तरह से जुताई करके फिर से चारा उगाना चाहिये।
- जिन चारागाह में पशु को चराया गया है, वहॉ फीताकृमि का संक्रमण ज्यादा होने कि संभावना होती है, अत: कुछ माह के लिये वहाँ चराई बंद कर देना अत्यंत लाभदायक सिद्ध होता है।
- अगर पशु इस कृमि से ग्रसित हो गया है, तो इसको उपचार के लिए डीवॉर्मिंग (बेंजामिड़ोले) 5-8 मिली. ग्राम/किलोग्राम शरीर का वजन के अनुसार देना चाहिए।
- पशु में सुधार नहीं होने पर तुरंत लोकल वेटरनरी डॉक्टर से परामर्श लें।

पर्णकृमि से होने वाले रोग एवं उपचार:-

पर्णकृमि से मुख्यत: फेसिओला एवं एम्फीस्टोम से पशुओं में बीमारी फैलता है।

- यह रोग घोंघों के माध्यम से फैलता है, और फेसिओला का संक्रमण ज्यादातर गर्मियों के उत्तरार्द्ध में या बारिष के बाद बकरियों में ज्यादा मिलता है।

- फेसिओला मुख्यत: यकृत को हानि पहुँचाता है तथा ये खून भी चूसता है, जिससे पशु बहुत ज्यादा कमजोर हो जाता है।
- इस रोग के प्रमुख लक्षण जबड़ो के नीचे सूजन आना एवं बकरियों की त्वचा खुरदरी हो जाती है।
- अन्य पशुओं की तुलना में बकरियाँ फेसिओला के संक्रमण हेतु ज्यादा संवेदनशील होती है, जिसके कारण बकरियों में मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है।

- इस बीमारी से ग्रसित पशु के निदान हेतु मल की प्रयोगशाला में जाँच होनी चाहिए या जहाँ सुविधा उपलब्ध हो वँहा खून एवं दूध की जांच करके बीमारी को आसानी से पता लगाया जा सकता है।
- चूँकि ये बीमारी घोंघें से फैलता है इसलिए घोंघों का नियंत्रण आवश्यक रूप से करना चहिये एवं पशुओं के चारों ओर बाड़ लगाकर संक्रमित क्षेत्र को चरने या पानी पीने से रोकना लाभदायक सिद्ध होता है।
- फेसिओला से ग्रसित पशु को ड्रग ऑफचॉइस के रूप में ट्रैकाइलबेण्डाजोल (0.2 ली. / कि. ग्राम शरीर का वजन के अनुसार) सबसे सर्वोत्तम माना जाता है।
- एम्फीस्टोम परजीवी से होने वाले रोग को बीसी रोग कहा जाता है एवं इस बीमारी के प्रमुख लक्षण भूख न लगना, रक्त की कमी, जबड़ो के नीचे सूजन एवं दस्त लगना है।
- यह भी परजीवी घोंघों के माध्यम से फैलता है अत: बारिष के समय कृमिनाशक दवा बकरियों को अवश्य पिलाना चाहिए।
- एम्फीस्टोम से ग्रसित पशु को ड्रग ऑफचॉइस के रूप में ऑक्सीक्लोजानाइड (15 मि. ग्राम / कि. ग्राम) को सबसे सर्वोत्तम माना जाता है।
- रोग से ग्रसित पशु में सुधार नहीं होने पर तुरंत लोकल वेटरनरी डॉक्टर से परामर्श लें।

गोल कृमि से होने वाले रोग एवं उपचार:-

- बकरियों में गोल कृमि से रोग मुख्यत: हीमोन्कस एवं ईसोफेगोस्टोमम नामक परजीवियों से फैलता है।
- ये परजीवियां मुख्यत: वर्षा ऋतु में पशुओं को ज्यादा संक्रमित करता है।
- ये परजीवियां बकरियों के पेट से रक्त चूसकर उन्हें रक्ताल्पता का शिकार बना देता है, इससे कभी-कभी पशुओं की मृत्यु भी हो जाती है।
- जो बकरियाँ मुख्यत: चारे पर ही निर्भर होती हैं, तो ऐसी बकरियों में यह परजीवी रोग अधिक मिलता है।
- इस रोग से ग्रसित पशु का मुख्य लक्षण रक्ताल्पता, जबड़ो के नीचे सूजन एवं शरीर के वजन में सही से वृद्वि नहीं होता है।
- रोगों के निदान हेतु पशु के मल की जाँच करवानी चाहिए एवं उपचार हेतु पशु चिकित्सक के परामर्श लें।
- बकरियों के मेंमनों में यह रोग अधिक होता है, अत: उन्हें बकरियों से अलग चराना चाहिए।

- बकरियों में गोल कृमि के कारण आंतों में गाठ पड़ जाती हैं जिससे कि लगातार दस्त की समस्या होती है तथा मल गहरे हरे रंग का हो जाता है।
- इस रोग से पशु कमजोर होने लगता है तथा समय पर इलाज न होने पर पशु की मृत्यु भी हो सकती है।
- बचाव के लिए पशु गृह को साफ-सुथरा तथा जहाँ तक हो सके सूखा रखने का प्रयास करें।
- बकरियों के मल को समय-समय पर हटाते रहें ताकि लारवा एकत्रित न हो पायें।

प्रोटोजोआ से होने वाले रोग एवं उपचार:-

- छ: माह की उम्र तक मेमनों में कोक्सीडियोसिस होने की संभावना अधिक होता है।
- मेमनों में यह रोग मुख्यत: संक्रमित भोजन एवं पानी के सेवन से होता है और सबसे ज्यादा प्रकोप सामान्यत: मानसून के आगमन के साथ होता है।
- इस रोग का लक्षण पानी जैसा दस्त या खूनी दस्त, पेट दर्द तथा कमजोरी हो जाता है, अगर सही समय पर न उपचार न करें तो मेमनों की मृत्यु भी हो सकती है।
- संक्रमित पशु को अन्य पशुओं से पृथक करके उसका उपचार करवाना चाहिए।

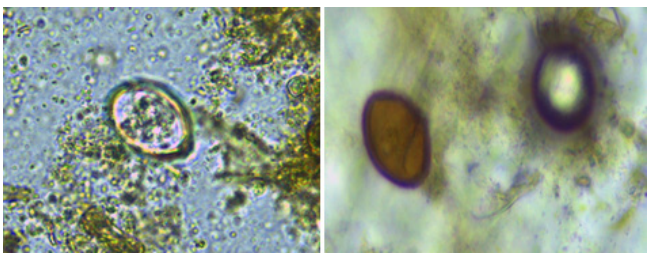

- पशु गृह में क्षमता से अधिक पशु नहीं रखने चाहिए।
- पशु गृह में बिछावन समय-समय पर बदलते रहें तथा पशुओं के खाने व पीने के पात्र साफरखने चाहिए।
- कुछ महीनों के अंतराल पर कृमिनाशक दवा बकरियों को अवश्य पिलाना चाहिए।

बाह्य परजीवी से होने वाले रोग एवं उपचार:-

- आंतरिक परजीवी के अलावा बाह्य परजीवी से भी बकरी को हानि पहुँचती है।
- बकरी में विषेशकर त्वचा एवं थनों में जूँ एवं किलनी लग जाती हैं।
- ये किलनी न केवल बकरियों के शरीर से रक्त चूसती है बल्कि कई बीमारियां भी फैलाती है।
- किलनियों से बचाव के लिए आस-पास की संक्रमित घास जला देने से किलनियों की अवयस्क अवस्थायें नष्ट हो जाती है।
- बकरी में खुजली भी बाह्य परजीवियों के कारण ही होती है।
- बकरियों में खुजली के कारण बालों का झड़ना, त्वचा मोटी तथा तांबे के रंग की हो जाना प्रमुख लक्षण है।
- बकरी को खुजली से बचाने के लिए प्रत्येक तीन महीने पर कीटनाशक दवा के घोल से नहलाना चाहिए।
- दवा के घोल से नहलायें एवं पूरे शरीर पर अच्छे से फैला दें, विषेशकर जहॉ खुजली की समस्या है।
- नहलाने के एक घंटे बाद करंज का तेल लगा दें।
- बकरी के रहने के स्थान पर भी दवा का छिड़काव करें।
- नहलाने के दिन का चुनाव करते समय धूप वाले दिन को चुने।

प्रान्तीय ईर्ष्या-द्वेष दूर करने के लिए जितनी सहायता हिन्दी प्रचार से मिलेगी उतनी किसी दूसरी चीज से नहीं।

-सुभाष चन्द्र बोस

लाभदायक शूकर पालन

डॉ॰ कादिरवेल गोविंदसामी, डॉ॰ संदीप घटक, श्री आर.डी. शर्मा

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम – 793103, मेघालय

लुम्सनियांग गिल्ट

लुम्सनियांग बोअर

देश के पूर्वोत्तर क्षेत्र में पशुपालन, कृषि का एक अभिन्न और अविभाज्य अंग है। अधिकांश किसान अपनी आर्थिक सहायता के लिए पशुधन पर निर्भर हैं। सभी पशुधन में शूकर इस क्षेत्र का सबसे मूल्यवान पशुधन है, विशेष रूप से आदिवासी आबादी में, जिसमें इस क्षेत्र के विभिन्न राज्यों की आबादी का 60 – 90% शामिल है। लगभग 100% आदिवासी आबादी मांस खाने वाले हैं और ज्यादातर मामलों में उनकी पहली प्राथमिकता शूकर का मांस है। पोर्क उपभोक्ता की संख्या में वृद्धि के कारण आवश्यकता लगातार बढ़ रही है। शूकर के मांस की कमी को क्षेत्र के बाहर से शूकर आयात करके पूरा किया जाता है।

शूकर के फार्म कैसे शुरू करें:

किसान के लिए आवश्यक है यह निर्धारित करना कि वह किस प्रकार का शूकर फार्म स्थापित करना चाहता है। शूकर फार्म निम्न प्रकार के होते हैं।

क) वाणिज्यिक प्रजनन फार्म

ख) अर्ध वाणिज्यिक

ग) फेटनर फार्म

घ) छोटे पैमाने पर प्रजनन फार्म

आर्थिक और रोग मुक्त शूकर उत्पादन के लिए शूकर फार्म शुरू करने एवं शूकर फार्म के प्रबंधन से पहले किसान को निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदुओं को आवश्य जानना चाहिए।

क) स्थल चयन:

किसी भी पशुधन फार्म की स्थापना के लिए स्थल का चयन बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि लाभ का अंतिम मार्जिन काफी हद तक फार्म के स्थल पर निर्भर करता है। फार्म पास के कस्बे/शहर में होना चाहिए जहां सड़क और परिवहन की अच्छी सुविधाएं हों। इसके अलावा पशुधन के उत्पाद के लिए अच्छा बाजार होना चाहिए। किसी भी पशुधन फार्म को स्थापित करने के लिए चारे की उपलब्धता, स्वास्थ्य देखभाल के उपाय, बिजली और पानी की सुविधा भी बहुत आवश्यक है।

ख) स्टॉक का चयन:

(i) नस्ल का चयन:

शूकर पालन में लाभ काफी हद तक उसके प्रजनन स्टॉक और फार्म में पाले जाने वाली नस्ल पर निर्भर करता है। नस्ल का चयन मुख्य रूप से उद्यम के प्रकार पर निर्भर करता है अर्थात चाहे वह प्रजनन फार्म हो या मेद फार्म। प्रजनन फार्म के लिए हमेशा उच्च उत्पादकता वाले शुद्ध नस्ल या उन्नत शूकर की सलाह दी जाती है। व्यावसायिक प्रजनन के उद्देश्य से विदेशी नस्ल या कुछ उत्पादकता स्थानीय शूकरों या उन्नत शूकरों का चयन किया जाना चाहिए। हालांकि, फैटनर पालन के लिए किसान क्रॉस नस्ल के जानवरों का चयन कर सकता है। इसके अलावा आवश्यकता और स्थानीय मांग के अनुसार नस्ल का चयन करना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि कुछ जगहों पर सामान्य लोग दुबला मांस पसंद करते हैं और कुछ अन्य जगहों पर वसा वाले मांस को प्राथमिकता दी जाती है। इसके अलावा कुछ लोग केवल काले शूकर का मांस पसंद करते हैं।

शूकरों की अधिकतर विदेशी नस्लें आकार में बहुत बड़ी होती हैं। पूर्वोत्तर क्षेत्र के अधिकतर किसान सीमांत और छोटे किसान हैं। इसके अलावा कुछ ही किसान प्रजनन फार्म के बारे में विचार करते हैं। अधिकांश छोटे और सीमांत किसान मोटी खेती में रुचि रखते हैं। शूकरों की विदेशी नस्ल आकार में बहुत बड़ी होती है और उनकी प्रबंधन लागत भी अधिक होती है। अधिकतर सीमांत और छोटे किसान इतने बड़े आकार के शूकर पालने की स्थिति में नहीं हैं। इस प्रकार के किसान विभिन्न एजेंसियों/संगठनों द्वारा विकसित संकर या उन्नत शूकरों का चयन कर सकते हैं।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में अधिकतर शूकर किसान छोटे/सीमांत किसान हैं, जो एक समय में 2 – 5 पशुओं को रखते हैं। अधिकतर चर्बी बढ़ाने के उद्देश्य से प्रत्येक जिले में कम से कम एक बड़े प्रजनन फार्म की स्थापना करना अत्यंत महत्वपूर्ण है ताकि इन किसानों के चर्बी वाले शूकरों की आपूर्ति को बनाए रखा जा सके।

ग) आवास:

शूकर पालन से होने वाली शुद्ध आय कई कारकों पर निर्भर करती है। आवास एक ऐसा कारक है और यह शूकर पालन से होने वाली शुद्ध आय पर 20% की सीमा तक उत्तरदायी है। इसलिए, शूकरों के विभिन्न श्रेणियों को उनकी आवश्यकताओं के अनुसार उचित आवास सुविधाएं प्रदान करना महत्वपूर्ण है।

बारिष, हवा, तूफान, उच्च तापमान, ठंड और चरम जलवायु से बचाने के लिए सामान्य रूप से पशुधन के लिए आवास आवश्यक है। शूकर पालन फार्म के प्रकार और आकार और किसानों की आर्थिक स्थिति के आधार पर घरों का निर्माण स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री जैसे जंगल पोस्ट, लकड़ी के तख्ते, बांस, फूस की घास या ईंट, लोहे की चादर/एस्बेस्टस छत के साथ सीमेंट कंक्रीट से किया जा सकता है। हालांकि, दोनों ही मामलों में फर्श की आसान सफाई के लिए कंक्रीट या लकड़ी के तख्ते होनी चाहिए। रेलिंग के प्रावधान के साथ फरोइंग के लिए अलग कमरे होने चाहिए। खुली जगह में चारा/पानी के कुंड की व्यवस्था की जानी चाहिए।

घ) प्रजनन:

यह देखा गया है कि पूर्वोत्तर क्षेत्र की कई जनजातियाँ काले रंग के शूकर का मांस पसंद करती हैं। बड़े पैमाने पर वाणिज्यिक फार्म के लिए विदेशी नस्लों जैसे हैम्पशायर, लार्ज ब्लैक, सैडलबैक या यॉर्कशायर, जो हमारे देश में उपलब्ध हैं, उनका चुनाव किया जा सकता है। हालांकि, छोटे और सीमांत किसानों के लिए इतने बड़े जानवरों को पालना मुश्किल होगा। तब उस स्थिति में वे उन्नत शूकर या कुछ स्थानीय शूकर जैसे घुंघरू या मिजोरम, मणिपुर और नागालैंड में पाए जाने वाले तथाकथित बर्मी शूकरों को पाल सकते हैं। नस्ल का चुनाव जर्मप्लाज्म की उपलब्धता पर निर्भर करता है। उपरोक्त सभी शूकर पूर्वोत्तर क्षेत्र में या तो राज्य सरकार के फार्म अथवा अनुसंधान संगठन अथवा किसी गैर सरकारी संगठन के फार्म में पाए जाते हैं। ज्ञात स्रोत से ही पशुओं, विशेष रूप से प्रजनन करने वाले पशुओं को ख़रीदना चाहिए।

इसके अलावा विशेष शूकरी के व्यक्तिगत रिकॉर्ड को देखा जाना चाहिए। इनमें पहली फैरोइंग की उम्र, जन्म के समय लीटर का आकार और दूध छुड़ाना, फैरोइंग की कुल संख्या, इंटर फैरोइंग पीरियड, मदरिंग क्षमता, पिगलेट और शूकरी में कोई विकृति, टीट्स की संख्या, नरभक्षण आदि शामिल हैं।

एक गिल्ट नस्ल, आकार, पोषण की स्थिति और प्रबंधनीय कारकों के आधार पर 6-11 महीने की उम्र में परिपक्व होता है। गिल्ट को तभी बांधा जाना चाहिए जब वह शारीरिक रूप से फिट हो और कामोंमाद का चिन्ह दिखाते समय उचित विकास कर रहा हो। एस्ट्रस शुरू होने के 18 से 24 घंटे बाद संभोग के लिए सबसे अच्छा समय है। गर्भाधान दर और शूकरों की संख्या में वृद्धि तब पाई गई जब जानवरों को दो बार ब्रिड किया गया।

जानवरों को या तो प्राकृतिक संभोग के माध्यम से या कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से ब्रिड किया जा सकता है। शूकर वीर्य संग्रह तकनीक और संरक्षण के मानकीकरण के बाद अब कृत्रिम गर्भाधान लोकप्रिय हो रहा है।

ङ) भोजन:

शूकर फार्म में उत्पादन लागत का अधिकतर भाग फीडिंग के कारण होता है। कुल उत्पादन लागत में फीडिंग का योगदान 70- 75% होता है। इसलिए, जानवरों को किफायती लेकिन संतुलित आहार देना महत्वपूर्ण है क्यों कि जानवरों में इष्टतम विकास प्राप्त करने के लिए सभी पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। आम तौर पर दो प्रकार के फ़ीड का अभ्यास किया जाता है। जैसे -

ए) विभिन्न फ़ीड सामग्री के साथ गणना की गई फ़ीड को केंद्रित करें।

बी) स्थानीय रूप से उपलब्ध अन्य कृषि-औद्योगिक उत्पादों, कंद फसलों, सब्जियों के कचरे आदि के साथ फ़ीड मिश्रित करें।

सी) शूकर के लिए सामान्य सांद्र आहार सूत्र नीचे दिया गया है:

शूकरों की विभिन्न श्रेणियों के लिए फ़ीड सूत्र

सामग्री (प्रतिशत)	वीनर	उत्पादक	9 - 12 महीने	गिल्ट और शूकरी
मक्का	55	58	60	50
जीएन केक	17	15	8	13
गेहु का भूसा	20	20	25	20
चावल की पॉलिश	-	-	-	10
मछली/सोया भोजन	6	5	5	5
खनिज मिश्रण	1.5	1.5	1.5	1.5
नमक	0.5	0.5	0.5	0.5
कुल	100	100	100	100

च) हिडिंग:

फार्म के सबसे महत्वपूर्ण पहलुओं में से एक प्रबंधन है। पशुधन में फार्म की लाभप्रदता काफी हद तक उचित प्रबंधन पर निर्भर करती है जिसमें कर्मचारी, पशु, चारा, प्रजनन, स्वास्थ्य देखभाल, पर्यावरण आदि का प्रबंधन शामिल है। इष्टतम उत्पादन प्राप्त करने के लिए लगभग 30 शूकरों के लिए एक कर्मचारी को नियोजित किया जाना है। फीडिंग प्रबंधन में स्थानीय रूप से उपलब्ध कृषि-औद्योगिक अपशिष्ट, सब्जी अपशिष्ट, कंद फसलों आदि को शामिल करके सभी आवश्यक सामग्री वाले किफायती राशन की आपूर्ति शामिल है। अर्थपूर्ण उत्पादन और अधिक लाभ के लिए पशुधन आधारित एकीकृत खेती में बागवानी फसलों, मछली और अन्य नकदी फसल के साथ एकीकृत खेती किए जाने की हमेशा सलाह दी जाती है।

स्वास्थ्य देखभाल:

शूकर विभिन्न प्रकार के रोग से भी संक्रमित हो सकते हैं जैसे परजीवी, जीवाणु, वायरल आदि। स्वास्थ्य की देखभाल पर्याप्त उपायों और उचित स्वच्छता उपायों का पालन करके अधिकतर बीमारियों को रोका जा सकता है। शूकरों में कुछ सामान्य जीवाणु और वायरल रोगों से बचने के लिए नियमित रूप से पशुओं का टीकाकरण समय-समय पर करके रोका जा सकता है। तीन महीने में एक बार कृमिनाशक के साथ नियमित रूप से डी-वर्मिंग करके गैस्ट्रो-इंटेस्टिनल पैरासाइट की समस्या से निजात पाया जा सकता है। यह जानने के लिए कि पशु किसी बीमारी से पीड़ित है या नहीं, हर रोज पशुओं का सावधानीपूर्वक जांच करना आवश्यक है। किसी भी बीमारी के होने से पशु की उत्पादकता प्रभावित होती है और इससे फार्म की आर्थिक उत्पादकता प्रभावित होती है।

हरी खाद का उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने में उपयोग

संजय कुमार गुप्ता, राहुल कुमार, सुरेश यादव एवं संदीप जायसवाल
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

हरी खाद का करे उपयोग, यही है यूरिया बचत का संयोग

आज की आधुनिक खेती में यूरिया उर्वरक की मांग वर्ष दर वर्ष बढ़ती जा रही है, जिसके कारण बाजार में पर्याप्त मात्रा में यूरिया उपलब्ध करा पाना बहुत बड़ी चुनौती है। इस परिदृश्य में हरी खाद का उपयोग कर यूरिया उर्वरक बचत करने का वैकल्पिक उपाय है। मृदा उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने में हरी खाद का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। सघन कृषि पद्धति के विकास तथा नगदी फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल बढ़ने के कारण हरी खाद के प्रयोग में निश्चित ही कमी आई है। लेकिन बढ़ते उर्जा संकट, उर्वरकों के मूल्यों में वृद्धि पर्याप्त आपूर्ति न होना तथा गोबर की खाद एवं अन्य कम्पोस्ट जैसे कार्बनिक स्त्रोतों की सीमित आपूर्ति से आज हरी खाद एक वैकल्पिक एवं प्रभावकारी उपाय है।

हरी खाद क्या है :- दलहनी एवं अदलहनी फसलों को उनके वानस्पतिक वृद्धि के उपरांत मृदा की उर्वरता एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए जुताई करके मिट्टी में अपघटन के लिए दबाना ही हरी खाद देना है, ये फसले अपने जड़ ग्रंथियों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु द्वारा वायुमण्डल में विद्यमान अपार भंडार से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने में सहयोग प्रदान करती है।

हरी खाद के लाभः-

1. मृदा सतह में पोषक तत्वों का संरक्षण एवं एकत्रीकरण ।
2. मृदा में जीवांश एवं फसलों हेतु आवश्यक नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाती है।
3. खरपतवार नियंत्रण।
4. मृदा की भौतिक दशा सुधार।
5. क्षारीय एवं लवणीय भूमियों का सुधार।
6. वर्षा जल को भूमि में अधिक मात्रा में अवशोषण करने की क्षमता बढ़ाना।
7. फसलों के उत्पादन में वृद्धि ।

हरी खाद के आवश्यक गुणः-

1. फसल कम समय में अधिक वृद्धि करती हो।
2. फसल की जड़े अधिक गहराई तक पहुँचती हो।
3. फसल के वानस्पतिक अंग मुलायम हो।
4. मृदा के जीवांश पदार्थ के स्तर को बनाये रखने के लिए हरी खाद उगाना आवश्यक है।
5. लवणीय भूमि के सुधार के लिए व मृदा क्षरण /कटाव को कम करने हेतु।
6. रासायनिक खादो के उपयोग में निरंतर कमी लाने हेतु।
7. फसल की जल मांग व पोषक तत्वों संबंधी मांग कम हो।
8. कीट पतंगों के आक्रमण को सहन करने वाली हो।
9. भूमि पर प्रभाव अच्छा छोड़ती है।
10. विभिन्न प्रकार की मृदाओं में पैदा होने में सक्ष्म हो।

हरी खाद की फसलेः-

सनई, ढेंचा, उर्द, लोबिया, बरसीम, मूँग, सैंजी, ग्वार इत्यादि।

प्रमुख हरी खाद फसलों की विशेषताएँ

क्र .	फसल	बीज दर प्रति हे./कि.ग्रा	हरे पदार्थ की मात्रा (टन/हे.)	नाइट्रोजन का प्रतिशत	प्राप्त नाइट्रोजन (कि.ग्रा./हे.)
1	ढेंचा	35	20–25	0.42	84–105
2	सनई	30	20–30	0.43	86–129
3	मूंग	10–12	8–10	0.48	38–48
4	उर्द	10–12	10–12	0.41	41–49
5	लोबिया	50–60	15–18	0.49	74–88
6	ग्वार	25–30	20–25	0.34	68–85
7	सैंजी	30–35	7–8	0.49	60–70
8	बरसीम	30–35	6–8	0.46	55–65

हरी खाद देने की विधियॉं:-

1. हरी खाद की स्थानीय विधि (इन सिटू विधी):- इस विधि में हरी खाद की फसल को उसी खेत में लगाया जाता है। जिसमें हरी खाद का उपयोग करना होता है, यह विधि समुचित वर्षा अथवा सुनिश्चित सिंचाई वाले क्षेत्रों में अपनाई जाती है। इस विधि में फूल आने से पूर्व वानस्पतिक वृद्धिकाल (6-8 सप्ताह) में मिट्टी में पाटा या ग्रीन मैन्योर टैम्पलर से पलट दिया जाता है।
2. हरी पत्तियों की हरी खाद:- इस विधि में हरी खाद की फसलों की पत्तियों एवं कोमल शाखाओं को तोड़कर खेत में फैलाकर जुताई द्वारा मृदा में दबाया जाता है व हल्की सिंचाई कर उसे सड़ा दिया जाता है। यह विधि कम वर्षा वाले क्षेत्रों में उपयोगी होती है।

सेब का मुख्य रोग एवं कीट और उनका प्रबंधन

डॉ॰ रघुवीर सिंह, वैज्ञानिक (प्लांट पैथोलॉजी)

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, अरुणाचल प्रदेश केंद्र, बसर - 791101 (अरुणाचल प्रदेश)

बागवानी एक लाभप्रद व्यवसाय है जो हमारे देश की कुल खेती योग्य भूमि के 8.5 % क्षेत्र से देश के कृषि के सकल घरेलु उत्पादन में 29.6 % का योगदान देता हैं। हमारे प्रदेश का जलवायु विभिन्न प्रकार के फल सब्जियों तथा फूल उगाने के लिए उपयुक्त है और हमारे केंद्र का हमेशा से ये प्रयास रहा है की बागवानों को उत्पादन में आधुनिक तकनीकों से निरंतर अवगत कराया जाए। केंद्र सरकार द्वारा हमारे प्रदेश में चलाये जा रहे राष्ट्रीय बागवानी मिशन से बागवानी को नई दिशा मिली है। फिर भी उत्पादन और गुणवत्ता बढ़ाने के लिए निरंतर प्रयास और तकनिकी विकास आवश्यक हैं। सेब के कम उत्पादन में रोगों व कीटो का प्रकोप प्रमुख कारण हैं।

सेब का मुख्य रोग और उनका प्रबंधन

(1) असामयिक पतझड़:

इस रोग के लक्षण पत्तों व फलों दोनों पर पाए जाते हैं। रोग-ग्रस्त बगीचों में वर्षा ऋतु के मध्य में परिपक्व पत्तियों पर गहरे भूरे व काले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं तथा रोग-ग्रस्त पत्तियाँ पिली पड़कर झड़ने लगती है। कुछ ही दिन में पौधों में निचले भाग की सभी पत्तियां गिर जाती हैं तथा पेड़ों की पत्ती विहीन टहनियों पर केवल फल ही लटकते दिखाई देते हैं।

प्रबंधन

1. गतवर्ष की गिरी हुई पत्तियां को इक्कठा करके जला दें।
2. पेडो की उचित काट छांट करें।
3. इस रोग के बचाव के लिए पेड़ों के फल लगाने की अवस्था से फल तोड़ने तक 15 से 20 दिनों के अंतराल पर मेन्कोजेब (300 ग्राम) या कार्बेन्डाजिम (50 ग्राम) प्रति 100 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

(2) श्वेत जड़ विगलन व तना सडन रोग:

इस रोग के संक्रमण से जड़ें भूरे रंग की हो जाती है और अधिक नमी में संक्रमित जड़ों के इर्द गिर्द सफेद रंग का कवकजाल रुई की तरह फैल जाता है। पौधे के तनें में विगलन व सड़न शुरू में अंडाकार से शुरू होकर पेड़ के चारो तरफ कत्ताही से लाल रंग के धब्बे के रूप में फैल जाता है।

प्रबंधन

1. बगिचे में पानी की निकासी ठीक से होना चाहिए।
2. प्रभावित पौधों में 500 से 1000 ग्राम प्रति पेड़ के दर से तौलिओं में चुना डालें।
3. प्रभावित पौधों व उसके आस पास के पौधों की कार्बेन्डाजिम (100 ग्राम/ 100 लीटर पानी) फफूंदनाशी से सिचाई करें।
4. तना सड़न रोग के रोकथाम के लिए प्रभावित पौधों के तनों पर बोर्दौक्स पेस्ट (नीला थोथा 1 किलोग्राम + चुना 1 किलोग्रम/10 लीटर पानी) लगाएं।

(3) स्केब :

इस रोग का आक्रमण सर्प्रथम सेब की कोमल पत्तियों पर होता है। इन पत्तियों की निचली सतह पर हल्के जैतूनी रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में भूरे रंग तथा काले हो जाते हैं। इस रोग के धब्बे फलों पर भी प्रकट हो जाते हैं।

प्रबंधन

1. सर्दियों में बगीचों में गिरी हुई पत्तियों को इकठ्ठा करके नष्ठ कर दें।
2. पतझड़ के समय पेड़ों पर 5 किलो यूरिया को 100 लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।
3. इस रोग के संक्रमण होने पर कार्बेन्डाजिम (50 ग्राम) या हेक्साकोनाजोल (50 मिलीलीटर)/100 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

सेब का मुख्य कीट और उनका प्रबंधन

(1) जड़ छेदक कीट:

इस कीट का वयस्क गहरे भूरे रंग के होते हैं जिनके सिर पर लंम्बा एंटीना होता है। मादा भिरिग जमीन में अंडे देती है, जिनके शिशु निकल कर पेड़ों की जड़ों को खाना शुरू कर देता है। इसका लारबा सफेद रंग का (75 - 100 मिलीमीटर) होता है, प्रभावित पेड़ों के पत्ते छोटे और पीले पड़ जातें हैं तथा अधिक आक्रमण के स्थिती में पौधें सुख जाते हैं।

प्रबंधन

1. तलिये बनाते समय जड़ छेदक शिशु को इकत्रित कर के मार दें।
2. वयस्क किटों को रात्रि के प्रकाश की ओर आकर्षित कर के मार दें।
3. नवम्बर से मार्च माह के मध्य में प्रभावित पौधों के तलिये के मुख्य तने के 1.25 मीटर घेरे में कलरपरफोर्स (20 इ. सी.) 500 मिलीलीटर /100 लीटर पानी में घोल बना कर सिचाई करें।

(2) रोयेंदार तेला :

यह एक बैगनी रंग का छोटा सा रस चूसने वाला कीट है जिसका शरीर सफेद रोयेंदार मोमी पदार्थ से ढका रहता हैं। यह झुंडो में पौधों के उपरी भाग जैसे कोमल टहनियों, पौधों के कटे भाग और भूमि में जड़ों से रस चूसते हैं तथा प्रभावित भागों में गांठे पड़ जाती है।

प्रबंधन

1. स्वस्थ पौधे पंजीकृत पौधशाला से खरीदें।
2. पौधशाला में 4 साल तक के पौधों में 10 ग्राम थिमट 10 गी के तने के चारो ओर घेरे में डालें।

(4) सेंजोस स्केल:

यह एक रस चूसने वाला छोटा सा कीट है जिसका शारीर गहरे स्लेटी रंग के कवच से ढका रहता है। प्रभावित फलों पर लाल रंग के ब्रिताकार धब्बे नजर आते हैं।

प्रबंधन :

इस कीट के नियंत्रण हेतु हरी पत्ती अवस्था एवं टाइट कल्स्टर अवस्था (फरवरी - मार्च) के मध्य शीतकालीन तेल (सर्वो) का 2 लीटर/ 100 लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करें।

हिन्दी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है। मेरी आंखे उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक ही भाषा में बोलने लगेंगे

– महर्षि दयानंद

जूट पौधों के छाल एवं रूट-कटिंग्स के अपगलन/ रेटिंग के लिये यांत्रिकृत पानी की टंकी का विकास एवं परीक्षण

डॉ॰ अभय कुमार ठाकुर, डॉ॰ विद्या भूषण शंभू , डॉ॰ इन्दुशेखर सिंह एवं राम दयाल शर्मा

जूट के अपगलन (सड़ाने/रेटिंग) की प्रकिया में पेक्टिनयुक्त पदार्थ सरल यौगिक में बदल जाते हैं और इस तरह तनों से रेशें अलग हो जाते हैं। सामान्यतया जूट के अपगलन की प्रक्रिया दो भिन्न चरणों में सम्पन्न होती है। पहला भौतिक चरण और दूसरा जैव रसायनिक चरण। जब कटाई उपरान्त पौधो को पानी में रखा जाता है तो वह भौतिक चरण की शुरूआत होती है। पौधों की कोशिकाएं पानी को सोखकर फूल जाती है और तने से अलग हो जाती है जिससे धुलनशील यौगिक पानी में घुल जाते हैं। जैव रासायनिक चरण मे मुक्त हुये पदार्थ जैसे कार्बोहाइड्रेट्स, नाईट्रोजन युक्त यौगिक और विभिन्न प्रकार के लवण पानी में जीवाणुओं की वृद्धि और गुणन में सहायक होते हैं। सड़ाने वाले जीवाणु रेशारहित पदार्थ मुख्यत: पेक्टिन और हेमिसेल्युलोज को खा जाते हैं। अपगलन की क्षमता कई कारकों जैसे पौधे की आयु, पानी की गुणवत्ता, पानी का पी.एच. और तापमान पर निर्भर करती है। 110 दिनों से ज्यादा आयु के परिपक्व जूट पौधों में लिग्नीन की काफी मात्रा जमा हो जाती है जिससे इसका अपगलन/रेटिंग कठिन हो जाता है। धीमी गति से बहने वाला मीठा पानी जिसका पी.एच. मात्रा 6 से 8 के बीच होती है, अपगलन/रेटिंग के लिये उपयुक्त होता है। जूट के अपगलन/रेटिंग के लिये पानी का अनुकुलतम तापमान 34 से 36 डिग्री सेल्सियस है । इस अवस्था में सड़ाने वाले जीवाणुओं का क्रियाकलाप काफी तेज होता है जिससे अपगलन/रेटिंग की प्रक्रिया कम समय में सम्पन्न हो जाती है। सड़ाने वाले पानी की सतह से 15 सें.मी. नीचे की गहराई पर सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता सर्वाधिक होती है और इस गहराई पर अपगलन/रेटिंग की प्रक्रिया बेहतर होती है।

अनियमित और असमय बारिष से नदियों और नहरों में होने वाली पानी की कमी की वजह से किसानों को मजबूरीवश अपने जूट की फसल को अपगलन के लिये स्थानीय गड्ढों, सड़क किनारे पाये जाने वाले कीचड़युक्त जलस्रोतों और सार्वजनिक उपयोग वाले नहरों और तालाबों में जूट के पौधों को डालना पड़ता है। गैर पारंपरिक तरीके से तैयार जूट की गुणवत्ता निम्न स्तर की होती है क्योंकि इसमें पानी की गुणवत्ता और तापमान पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। इसके अलावा ये ठहरे हुए पानी को प्रदूषित भी करते हैं जिससे ये पानी मच्छड़ों का प्रजनन स्थल बन जाता है और स्थानीय वातावरण को भी प्रदूषित करता है। जूट पौधों के अपगलन की पारंपरिक विधि में शारीरिक श्रम की भी अत्यधिक आवश्यकता होती है और प्रदूषित पानी में काम करने से त्वचा संबधी बीमारी होने का खतरा भी बना रहता है। यदा -कदा मजदूर इन प्रदूषित पानी में काम करने से मना भी कर देते हैं या अधिक मजदूरी की मॉग करते हैं। पारंपरिक विधि से ठहरे हुए पानी में जूट पौधों को सड़ाकर प्राप्त हुए जूट की गुणवत्ता भी निम्न स्तर की होती है जिससे बाजार में इसकी कम कीमत मिलती है साथ ही जूट रेशा से विविध प्रकार के उत्पाद बनाने में इसका उपयोग सीमित हो जाता है।

इस तरह हम पाते हैं कि जूट की अपगलन की पारंपरिक विधि न सिर्फअनेक प्राकृतिक कारकों पर निर्भर करती है बल्कि पानी की उपलब्धता पर निर्भर होने की वजह से वातावरण के प्रदूषण का कारण भी बनती है साथ ही कम गुणवत्ता वाले जूट की रेशों की प्राप्ति होती है। मीठे पानी के बहते स्रोतों की कमी, अनुचित अपगलन की विधियों और कटाई उपरांत रखरखाव की वजह से प्राप्त जूट के रेशों का रंग अच्छा नहीं होता है साथ ही रेशा की सतह खुरदुरी एवं रेशों की लम्बाई भी कम होती है जिससे उच्च श्रेणी एवं गुणवत्ता वाले रेशों की उपलब्धता सीमित हो गयी है।

आई.सी.ए.आर.-राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता में पानी की कमी वाले क्षेत्र के लिये जूट पौधों के अपगलन की विभिन्न विधियों की समस्याओं को और जूट पौधों की अपगलन-विधियों की वर्तमान स्थिति के बारे में अनुसंधान कर जानकारी उपलब्ध कराई गई है। फसल की कटाई के समय पानी की कमी होने के कारण किसान कीचड़ वाले और अपर्याप्त पानी वाले छोटे नहर का उपयोग हरे जूट के पौधों को सड़ाने में करते हैं। वातावरण पदूषण, मछली पालन, निम्न गुणवत्ता वाले रेशे और ज्यादा समय की खपत आदि अनेक समस्याएँ पारंपरिक जूट अपगलन विधि में दिखाई देती है। इसलिए पानी की कमी वाले क्षेत्रों में जूट के अपगलन की पारंपरिक विधि संभव नहीं है। जूट के रिबन/छाल को कृत्रिम तालाब जिसमें पोलिथिन से लाईनिग किया गया हो, उसमें सड़ाने की व्यवस्था पर जोर देना चाहिए।

जूट के पौधों का अपगलन: पेक्टिन, गोंद एवं अन्य लसदार पदार्थो के अपघटन और सड़न के द्वारा जूट के तने और गैर रेशेदार कोशिकाओं से रेशों को अलग करने की प्रक्रिया अपगलन या रेटिंग कहलाती है। जूट का अपगलन एक महत्वपूर्ण कटाई उपरांत प्रक्रिया

है जो काफी हद तक रेशों की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। अपगलन की प्रक्रिया में पेक्टिन युक्त तत्व विखंडित होकर सरल यौगिक में बदल जाते हैं और रेशे तने से अलग हो जाते हैं। अपगलन की विभिन्न प्राकृतिक स्थितियाँ और उनकी अवधि पर रेशों की गुणवत्ता निर्भर करती है। सामान्यतया जूट के पौधों का निचला हिस्सा कड़ा और मोटा होता है जिसकी वजह से इसके अपगलन में मध्य और उपरी हिस्सों की अपेक्षा ज्यादा समय लगता है। अधिक परिपक्वता और अनुपयुक्त सड़न की वजह से मिलों में पौधों के निचले हिस्से से प्राप्त रेशें जो कि पूरी तरह सड़ नहीं पाते हैं, काट कर अलग कर दिया जाता है जिन्हें कटिंग कहते हैं। तनायुक्त जूट रेशों के अलावा कुछ रेशे प्राकृतिक रूप से काँटेदार, दानेदार, कठोर और कम लचीले होते हैं जो कि निम्न गुणवत्ता वाले रेशों की श्रेणी में आते हैं जिसका उपयोग समान्य रेशों की तुलना में कम होती है। ऐसे रेशों की मात्रा जूट के कुल उत्पाद का 30 से 40 प्रतिशत् तक भी होती है जो कि कताई या धागे और आगे के प्रसंस्करण के लिये अनुपयुक्त होते हैं।

जूट अपगलन विधि के यांत्रिकीकारण की संभावनाएं: जूट, मेस्ता और अन्य रेशेदार पौधे हमें कपास की तरह प्रत्यक्ष तौर पर रेशा नहीं प्रदान करते। इन पौधों के तनों से रेशों को प्राप्त करने के लिये कटाई के बाद तनों को उपयुक्त माध्यम जो कि साधारणतया पानी होता है, में सड़ाने की आवश्यकता होती है। इसलिये अच्छी गुणवत्ता वाले रेशों को प्राप्त करने के दृष्टिकोण से अपगलन कटाई उपरांत की जाने वाली एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। अपगलन की विधि अपने आप में एक बोझिल और श्रम से परिपूर्ण प्रक्रिया है और आजकल पानी की कमी और मजदूरों की अनुपलब्धता की वजह से किसानों के लिये कठिनाई बढ़ गई है। अत: कम से कम पानी और मानवीय श्रम में अपगलन की प्रक्रिया को पूरा करने के लिये इस विधि के यांत्रिकीकरण करने की अत्यंत आवश्यकता है। जूट के पेड़ के तने से हरे छाल या रिबन को अलग करके उन रिबन को कृत्रिम तालाब या टैंक में सड़ाना एक उपयुक्त कदम हो सकता है क्योंकि इस प्रक्रिया में कम मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है, साथ ही श्रम और समय की भी बचत होती है। कटाई के उपरान्त पेड़ों के गट्ठर बनाना और उनको प्राकृतिक जलस्रोतों तक पहुँचाने में सबसे अधिक मजदूर की आवश्यकता होती है। इसके बाद सड़े तनों से रेशों को अलग करने में भी काफी मजदूरों की आवश्यकता होती है, साथ ही स्वास्थ्य संबंधी खतरे की वजह से कोई भी दूषित पानी में इस कार्य को करने की इच्छा नहीं रखता। आई0सी0ए0आर0 – निनफेट ने पहले ही एक शक्तिशाली पावर रिबनर का विकास किया है जो जूट के पेड़ों से बिना लकड़ी को तोड़े हरे छालों को निकालने में सक्षम है। इन रिबनों से बेहतर गुणवत्ता वाले रेशों की प्राप्ति के लिये एक उपयुक्त पानी का टैंक भी विकसित किया गया है जिसमें अच्छी रेटिंग या अपगलन के लिये पानी के धीमे बहाव की सुविधा उपलब्ध है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तैयार ये पानी की टंकी जूट के रिबन और पूरे पेड़ के अपगलन की प्रक्रिया के पूर्ण होने के समय को निर्धारित करने में मदद करेगी जिससे हमें अनुकूलतम गुणवत्ता वाले रेशों का उत्पाद प्राप्त होगा। जूट रिबनों या तनेदार जूट की टैंक-रेटिंग प्रणाली की तकनीक किसानों, जूट मिल, जूट मेस्ता अपगलन से संबंधित शोध एवं जूट उत्पादन और जूट एवं मेस्ता रेशों के कटाई उपरान्त उपयोगों में लाभदायक साबित हो सकता है।

जूट रिबन का अपगलन: जूट अपगलन की पारम्परिक विधि में कटे हुए पौधों के गट्ठर को पानी के स्रोतों में 18 से 20 दिन तक रखा जाता है। वर्तमान परिस्थितियों में पानी की पर्याप्त मात्रा के अभाव में किसानों को जूट के अपगलन के लिए काफी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। उनको अपने जूट की फसल को पारंपरिक तालाब, सड़के के किनारे बने गड्ढों और कीचड़ वाले पानी में डालने के लिये बाध्य होना पड़ता है और ऐसा करने से निम्न गुणवत्ता वाले रेशों की प्राप्ति होती है। निम्न स्तर के अपर्याप्त पानी की मात्रा में लम्बे समयावधि तक जूट को सड़ाने से अच्छी गुणवत्ता वाले रेशों की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अपगलन विधि में आने वाली उपरोक्त कठिनाईयों को ध्यान में रखते हुए रिबन रेटिंग विधि सफल साबित हो रही है। इस विधि में अपगलन में लगने वाला समय, पानी की मात्रा, जगह और श्रम अपेक्षाकृत कम लगता है। रिबन रेटिंग, अपगलन की एक खास विधि है जिसमें रिबनर मशीन की सहायता से पेड़ के डंठल से हरे छाल को जिसे रिबन कहते हैं, अलग कर उसकी रेटिंग की जाती है। इस विधि में पानी की मात्रा लगभग एक चौथाई की ही आवश्यकता होती है और रेटिंग की समयावधि भी लगभग एक तिहाई हो जाती है। पारम्परिक विधि से पूरे जूट के पौधों को सड़ाने में होने वाले प्रदूषण की मात्रा भी लगभग एक चौथाई ही होती है। पूरे पौधों के अपगलन में छाल से मुक्त हुए कार्बनिक पदार्थो की मात्रा रिबन रेटिंग विधि में अपेक्षाकृत काफी कम होता है जो कि पर्यावरण की दृष्टि से लाभदायक है। रिबन रेटिंग में रिबन की दोनों सतह पानी के सीधे सम्पर्क में होती है फलस्वरूप 6 से 8 दिनों में ही अपगलन की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। पारंपरिक विधि से पूरे पौधों को सड़ाने की अपेक्षा रिबन रेटिंग में रेशों की उपज और गुणवत्ता भी काफी अच्छी हो जाती है।

जूट के पौधों से रेशेदार छालों को अलग करने के लिए मशीनों और उपकरणों को विकसित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। हस्तचालित और विधुत चालित रिबनर और डिकार्टटिकेटर बनाये जा चुके हैं जिससे जूट पौधों से छाल या रिबन को अलग किये जाते हैं। जब डिकार्टटिकेटर से छाल को पौधों से अलग करते हैं तो डंठल छोटे-छोटे टुकड़े में टूट जाते हैं जो कि किसानों के हित के दृष्टिकोण से एक बड़ा नुकसान है, वही रिबनर मशीन तने से छालों को डंठल को टुकड़ा किए बिना अलग कर देता है जो कुशलता से रिबन निकालने के लिये किसानों को स्वीकार्य होगा। आ. सी. ए. आर. -निनफेट द्वारा दो मशीन उपकरणों का विकास किया गया है जो जूट और मेस्ता

के पौधों से बिना डंठल को तोड़े हरे छाल को सुगमता से अलग करता है। हस्तचलित रिबनर प्रति घंटा करीब 80 किलों पौधों से लगभग 35 किलोग्राम रिबन को निकाल सकता है वहीं पावर रिबनर मशीन प्रति घंटा 150 से 200 किलोग्राम पौधों का प्रसंकरण कर लगभग 60 से 80 किलोग्राम रिबन निकालने में सक्षम है।

कृत्रिम पानी की टंकी या तालाब में जूट रिबन का अपगलन: पारंपरिक विधि से पूरे पौधे के अपगलन की तुलना में रिबन के अपगलन में लगने वाली पानी की मात्रा घटकर मात्र एक चौथाई हो जाती है। बंगलादेश जूट रिसर्च इंस्टीच्यूट ने एक ऐसी तकनीक विकसित की है जिसमें कृत्रिम पानी की टंकी या गड्ढों में पॉलिथीन की परत लगायी जाती है और जूट रिबन को गोलाकार में व्यवस्थित कर उनमें रेटिंग की जाती है। अपगलन उत्प्रेरक के तौर पर यूरिया की निर्धारित मात्रा का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में अपगलन की अवधि घटकर सिर्फ7 दिन रह जाती है। हालॉकि पारंपरिक विधि से तैयार रेशों की अपेक्षा इस विधि से प्राप्त रेशों की गुणवत्ता में कोई फर्क नहीं होता है। आर.सी. ए. आर.-क्राईजेफ ने जीवाणुओं की सहायता से जूट के स्थानीय अपगलन की विधि विकसित की है। एक वृत्ताकार तालाब जिसके आधार का व्यास 6.5 मीटर, उपरी व्यास 7.5 मीटर और गहराई 1.0 मीटर जिसमें लगभग 1.0 मीटर चौड़ा मिट्टी का तटबंध होता है। पूरे तालाब में मोटा पालिथिन की चादर बिछा दी जाती है और उनमें पानी भर दिया जाता है। यह तालाब एक वीघा से प्राप्त जूट या मेस्ता को सड़ाने के लिये प्रर्याप्त है। जूट के गठ्ठरों को तालाब में तीन परतों में व्यवस्थित किया जाता है। सड़ाने की प्रक्रिया को तेज करने के लिये प्रयोगशाला में विकसित किये गये सूक्षमजीवों का प्रयोग किया जाता है। सड़न की प्रक्रिया के बाद सड़े हुए पानी की 50 प्रतिशत् मात्रा को बाहर निकाल दिया जाता है और उतना ही साफ पानी उसमें भर दिया जाता है जिसमें रेशों को साफ कर पौधों से अलग किया जाता है।

जूट के अपगलन की चीनी पद्धति कुछ हद तक अलग है। जूट के पौधों के बंडलों को अपगलन के स्थान तक जिसमें गड्ढे, तालाब, झील, जल प्रवाह वाली नदियां शामिल है, में ले जाया जाता है। बंडलों को 5 से 7 दिनों तक पानी के अंदर डुबाकर रखा जाता है। बंडलों को पानी में बहने से बचाने के लिये भार के तौर पर ईंटों और मिट्टी का उपयोग किया जाता है। जलमग्नता की इस अवधि के बाद पौधों को बाहार निकाल कर उसका रिबन निकाला जाता है । फिर रिबन के बंडलों को पानी में रेशा अलग होने तक डुबाया जाता है।

रेशों के कटिंग्स में कमी: जूट रेशों का जड़ वाला हिस्सा कटिंग्स कहलाता है। इस हिस्से को काटकर अलग कर दिया जाता है और काफी कम कीमत पर इसकी विक्री होती है। रेशों की गुणवत्ता में इसका बहुत बड़ा योगदान होता है, कटिंग्स की मात्रा जितनी कम होगी रेशों की गुणवत्ता उतनी ही बेहतर होगी। पौधों की अत्यधिक परिपक्वता ओर अनुचित अपगलन विधि ही इन कटिंग्स के बनने की मुख्य वजह है। जूट के पौधों का निचला हिस्सा उपरी हिस्से से मोटा होता है। अगर निचले हिस्से के रेटिंग के लिये ज्यादा समय दिया गया तो बीच का और उपरी हिस्सा अधिक सड़ जाएगा और उस हिस्से के रेशे कमजोर हो जाएगें। इसलिए जब मध्य भाग का हिस्सा पूरी तरह सड़ जाता है तब रेटिंग की प्रक्रिया बन्द कर दी जाती है। इसके फ्लस्वरूप निचले हिस्से का अपगलन पूरी तरह से नहीं हो पाता है और कटिंग्स बनती है। अगर निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाए तो कटिंग्स की मात्रा में काफी कमी लाई जा सकती है।

1. सही समय पर जूट के पौधों की कटाई
2. पानी में डुबाने से पहले पौधे के निचले हिस्से को पानी में भिंगाना
3. पानी में डुबाने से पहले जड़ वाले हिस्से को लकड़ी के हथौड़े से पीट कर नरम करना
4. पौधों को बीच से काट कर उपरी हिस्से और निचले हिस्से का अलग-अलग अपगलन करना

जूट के रिबनों का यांत्रिक टंकी में अपगलन/रेटिंग: जूट के छाल या रिबन के रेटिंग प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति को देखते हुए एक कृत्रिम पानी की टंकी को विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें जूट के उत्तम अपगलन के लिए नियंत्रित पानी के बहाव के लिए यांत्रिक नियंत्रक की सुविधा हो। विगत में जूट रेटिंग के लिये किसी भी प्रकार का यांत्रिक पानी की टंकी उपलब्ध नहीं थी। इसको ध्यान में रखते हुए एक कृत्रिम पानी की टंकी का विकास गया गया है जिसमें पानी के बहाव को नियंत्रित करने की भी सुविधा प्रदान की गयी है। जूट रिबन को जब कृत्रिम तौर पर नियंत्रित वातावरण में सड़ाया जाता है तो सड़े हुए रेशों की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले भौतिक और रासायनिक मापदण्डो के अध्ययन करने में सुविधा होती है। अपगलन में आने वाली कठिनाईयों को कम करने के लिए हुए तकनीकी विकास की कमी को देखते हुए ऐसा पाया गया है कि जूट अपगलन की विधि के मशीनीकरण या आंशिक मशीनीकरण की अत्यंत आवश्यकता है। उपरोक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए जूट पौधों या उसके रिबन को वैज्ञानिक विधि से सड़ाने के लिये आइ.सी.ए.आर.-निनफेट में एक यांत्रिक पानी की टंकी का अविष्कार किया गया है जिसका छाया चित्र नीचे दर्शाया गया है। यांत्रिक पानी की टंकी को तीन अलग-अलग टंकियों में विभाजित किया गया है। तीनों टंकियों को लोहे के ढॉचे पर फिट करके एक ईकाई बनाई गई है। तीनों टंकी पाईप के द्वारा आपस में जुड़ी हुई है जिससे पानी का प्रवाह एक टंकी से दूसरे और फिर तीसरे टंकी से होता हुआ पहले टंकी तक होता है। जूट के सड़न या रेटिंग की प्रक्रिया के दौरान पानी का प्रवाह समय समय पर किया जाता है। पानी के सुचारू प्रवाह के लिये एक आधा हार्सपावर का विद्युत मोटर लगया गया है। पहली टंकी में पानी का भण्डारण किया जाता है जबकि दूसरे और तीसरे टंकी में जूट रिबन का रेटिंग के लिये उपयोग किया जाता है।

विद्युत चालित रिबनर मशीन से पूरे जूट के पौधे से रिबनों को निकाल कर 25 किलो दूसरे टंकी में एवं 25 किलो तीसरे टंकी में डालते हैं। रिबनों को व्यवस्थित ढंग से लटकाने के लिये समुचित व्यवस्था बनाई गई है। रिबन डालने के बाद तीनों टंकी को पानी से भर देते हैं ताकि रेटिंग की प्रक्रिया शुरू हो सके। रेटिंग की प्रगति का मुआयना हरेक दिन किया जाता है। इस विधि से जूट रिबन की सड़न प्रक्रिया 7 दिनों में ही पूरी हो जाती है। सड़े हुए जूट रिबन को टंकी से बाहर निकाल कर उसे अन्य पानी की टंकी में साफकरते हैं जिससे हमें साफसुथरे रेशों की प्राप्ति होती है। जूट रेशों के गुणवत्ता विश्लेषण करने पर पाया गया कि यह टी0डी0एन0 2 लेबल की है जिसे बहुत अच्छा कहा जा सकता है (चित्र में दर्शायी गई है)। इस कृत्रिम व यांत्रिक टंकी का उपयोग जड़ वाली रेशों जिसे कटिंग्स कहते हैं, उसके रेटिंग के लिये भी किया गया और यह पाया गया कि कटिंग्स के रेटिंग के लिये भी यह टंकी काफी उपयोगी है। कटिंग्स के रेटिंग में सिर्फ 4 से 5 दिनों का ही समय लगता है।

लेखकों का वर्तमान पता:

डॉ० अभय कुमार ठाकुर, प्रधान वैज्ञानिक
कृषि अभियंत्रण संभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली-110012

डॉ० विद्या भूषण शंभू , प्रधान वैज्ञानिक
आई.सी.ए.आर.-राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता

डॉ० इन्दुशेखर सिंह, प्रधान वैज्ञानिक
आई.सी.ए.आर.-मखाना अनुसंधान केन्द्र, पूर्वी क्षेत्र के लिये अनुसंधान परिसर, दरभंगा, बिहार

श्री राम दयाल शर्मा
भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय

औषधीय मशरूम : रेशी (गैनोडर्मा लुसिडम) की उन्नत खेती

डॉ॰ रघुवीर सिंह, वैज्ञानिक (प्लांट पैथोलॉजी)

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, अरुणाचल प्रदेश केंद्र, बसर - 791101 (अरुणाचल प्रदेश)

पिछले एक दशक में औषधीय मशरूम के क्षेत्र में आई क्रांति से औषधीय मशरूमों की व्यवसायिक खेती की ओर देश के कृषकों का रुझान तेजी से बढ़ा है। विभिन्न देशों में अनेकों प्रगतिशील किसानों ने इस मशरूम की खेती में आशातीत सफलता भी प्राप्त की है जिससे प्रेरित होकर बड़ी संख्या में कृषक इस मशरूम की खेती की तकनीक, इनके बीज (स्पॉन), बाजार व इनसे प्राप्त लाभ आदि के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए लगातार प्रयासरत रहते हैं।

मशरूम का विवरण:

रेशी गैनोडर्मेटेसी कुल की मशरूम है। सामान्यत: 20 से 25 से.मी. लंबाई का फलन काय भूरे-लाल रंग का होता है। इसका कवक-जाल व फलन-काय का औषधीय उपयोग किया जाता है। यह वर्षा ऋतु में पेड़ों के जड़ों व तनों पर पाए जाते हैं।

औषधीय महत्व:

रेशी मशरूम का सूखा पाउडर विभिन्न रोगों के नियंत्रण हेतु उपयोग किया जाता है। ये पौष्टिक एवं बलकारक होते हैं। इसके बलवर्धक टॉनिक का उपयोग मधुमेह, कैंसर जैसे भयानक रोगों के उपचार हेतु किया जाता है। यह एंटी एच.आई.वी. भी पाया गया है। मानसिक तनाव की मुक्ति हेतु अनेक प्रकार की दवाइयां भी इससे बनाई जाती है।

रसायनिक संघटक:

रेशी मशरूम के कवक-जाल व फलन-काय में 100 से भी अधिक कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिक तथा तत्व एवं इनके व्युक्तपाद पाए जाते हैं। कार्बनिक समूह के उपसमूह सैपोनिक (ट्राईटर्पीनॉईड्स) चिकित्सीय गुणों के कारण महत्वपूर्ण हैं। इनमें पाए जाने वाले प्रोटीन (7-8%), पॉलीसैकेरॉईड्स, रेशे (60-65%) व वसीय अम्ल महत्वपूर्ण यौगिक हैं।

वातावरणीय कारक:

रेशी मशरूम की खेती के लिए उष्ण-आद्र जलवायु उत्तम रहता है तथा तापमान (30 से 35 डिग्री से.), आपेक्षित आद्रता (85-90%) व प्रकाश सघनता (120 से 200 लक्स) उपयुक्त पाई गयी है।

बीज (स्पॉन) को बनाना:

यह किसी भी नजदीकी मशरूम अनुसंधान केंद्र से प्राप्त किया जा सकता है। बीज को यदि किसान अपने घर पे बनाना चाहे तो इसके लिये प्रयोगशाला की जरूरत होती है जो उनके लिये अतिरिक्त आमदनी का साधन भी हो सकता है।

माध्यम को तैयार करना:

माध्यम (सब्सट्रेट) तैयार करने के लिये गेहुं का भूंसा व लकड़ी के बुरादे को पूरी रात भर पानी में भिगोते हैं। फिर सुबह उसे बाहर निकाल कर पानी निथार देते हैं। पूर्णत: पानी निकल जाने के बाद इसमें गेहुं का चौपड़ (20%) व कैल्शियम कार्बोनेट (1%) की दर से मिला देते हैं। अब इस मिश्रण को पॉलीथीन के बैग में भर देते हैं और पॉलीथीन का मुंह धागे से बंद कर देते हैं। फिर इसे दो घंटे तक औटोक्लेव करते हैं। इसके बाद माध्यम ठंडा होने पर 5% के दर से बिजाई करते हैं व बैगों को रैक्स पर रख देते हैं।

30 दिनों के भीतर कवक-जाल पूर्णत: फैल जाते हैं। इसके बाद बैगों पर चीरा लगा देते हैं। चीरा लगाने के बाद 85 से 90% आपेक्षित आद्रता रखनी पढ़ती है। 10 से 15 दिन के बाद पिन जैसी फलन-काय निकलनी प्रारंभ होती हैं जो 40 से 45 दिन में पूर्णतया: परिपक्व फलन-काय में विकसित हो जाती हैं। फलन-काय विकास के समय आपेक्षित आद्रता 80 से 85%, 120 से 200 लक्स प्रकाश सघनता व कार्बनडॉइऑक्साइड (200 पी.पी.एम.) को बनाए रखते हैं। इस प्रकार से 2 से 3 बार मशरूम प्राप्त कर सकते हैं तथा इस पूर्ण प्रक्रिया में 4 महीने का समय लगता है। फलन-काय को तोड़ कर धूप में सुखा देते हैं तत्पश्चात विपणन कर सकते हैं।

उपज: 1 किलो ग्राम सूखे हुए माध्यम से लगभग 250 ग्राम उपज प्राप्त होती है।

महत्वपूर्ण सावधानियां:

1. स्पॉन (बीज) मान्यता प्राप्त संस्थानों से ही खरीदें।
2. बिजाई (स्पॉनिंग) साफ-सुथरी जगह पर ही करें।
3. बिजाई के बाद बैगों को रैक्स पर अच्छी तरह से रखें व 22 से 25 डिग्री से. तापमान बनाए रखना चाहिए।
4. कवक-जाल के पूर्णत: फैल जाने पर बैग का रंग सफेद से गहरा भूरा होने पर ही चीरा लगाएं।
5. संक्रमित बैगों को दूर गड्ढों में फैंक देना चाहिये।
6. मक्खियों के संक्रमण से बचने के लिये नॉयलॉन जाली का उपयोग करें।

रेमी की उपयोगिता

डॉ॰ बी. वी. शंभू[1], डॉ॰ एल.के. नायक[1], श्री.आर. डी. शर्मा [2], डॉ॰ ए के ठाकुर[3]

[1.] भाकृअनुप–राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्ययोगिकी संस्थान, कोलकाता

[2.] भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिषद, उमियम

[3.] भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि अभियांत्रिकी संभाग, नई दिल्ली–110012

रेमी जिसे हिन्दी में रीहा कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम लोमेरिया नीविया एल गाड है। यह कठोर झाड़ीदार पौधा आर्टीकेसी परिवार का एक मात्र उद्भिद है जिससे हम उत्तम गुणवत्ता तथा अत्यधिक टिकाऊ, लम्बा, मजबूत और चमकदार रेशा प्राप्त कर सकते हैं। बहुवर्षीय पौधा होने के कारण इसकी एक बार खेती करने के पश्चात चार या पांच वर्षों तक रेशा प्राप्त कर सकते हैं। भारत में इसकी खेती भारत के उत्तर पूर्वी क्षेत्रों–अरूणाचल प्रदेश, असम, मेघालय की पहाड़ियों की तलहटी में, मणिपुर तथा पश्चिम बंगाल के अतिरिक्त नीलगिरि पहाड़ी के कुछ हिस्सों तथा हिमाचल प्रदेश की कोगड़ाघाटी में भी सफलता पूर्वक की जा सकती है। भारत में इसकी खेती लगभग 350 हेक्टर भूमि में की जाती है जो विदेशी मांग की दृष्टिकोण से बहुत कम है। इसके रेशा के निर्यात से राष्ट्रीय आय में अप्रत्याशित वृद्धि हो सकती है ।

रेमी की उपयोगिता–

रेमी का उपयोग रक्त संचालन, वात रोग तथा पॉवपिल रोग में दवा के रूप में किया जाता है। इसकी पत्तियों में प्रोटीन की मात्रा अत्याधिक होने के कारण गाय, भैंस, मुर्गी, हंस इत्यादि के आहार के रूप में इसका उपयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इसके अवशेष को जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें उपलब्ध घुलनशील गोंद से कार्बोहाइड्रेट, पालिश तथा प्राकृतिक गोंद की प्राप्ति होती है। गोंदमुक्त रेशा का उपयोग वस्त्र उद्योग में आसानी से किया जा सकता है। 3 से 6 प्रतिशत गोंदयुक्त रेशा का उपयोग परदा का कपड़ा, पैरासूट की डोरी तथा विद्युत चालित बैटरी के खांचा का कपड़ा बनाने में किया जाता है। 6 प्रतिशत से अधिक गोंदयुक्त रेशा का प्रयोग होस पाइप, जल परिवहन की थैली, दमकल का होस पाइप, जूता का कपड़ा और वाणिाज्यिक पैकिंग का कपड़ा बनाने में किया जाता है । रेमी के रेशा के प्राकृतिक अथवा रासायनिक रेशा के साथ सरलता पूर्वक मिला कर 100 काउन्टर सूता तैयार किया जा सकता है। रेमी के रेशा के अतिरिक्त अन्य रेशा को बार–बार धोने से उसकी शक्ति का ह्रास होता है जबकि भिगे अवस्था में रेमी के रेशा की शक्ति में लगभग 33 प्रतिशत की वृद्धि होती है। रेमी के पौधे के उपरी भाग का प्रयोग कागज बनाने में तथा अवशेष का पार्टिकल बोर्ड बनाने में प्रयोग किया जाता है ।

कैसा मौसम कैसी मिट्टी–

भारत के उत्तर–पूर्वी भाग की जलवायु रेमी की खेती के लिए उपयुक्त पाई गई है। समुद्र तल से 300 मीटर ऊँचे क्षेत्रों में जहाँ वार्षिक वर्षा 1500 से 3000 मि.ली., तापमान 20–31 डिग्री सें.ग्रे. तथा अपेक्षिक आर्द्रता 25 प्रतिशत होती है वहाँ रेमी की खेती सफलतापूर्व की जा सकती है। धूप के साथ वर्षा इसकी खेती के लिए उपयुक्त मौसम है परन्तु बदलीयुक्त मौसम इसकी उपज और रेशा की गुणवत्ता दोनों को प्रभावित करता है। उत्तर–पूर्वांचल के अतिरिक्त तराई भूभाग और पश्चिमी पर्वतमाला के आस–पास के क्षेत्रों में भी रेमी की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। रेमी की खेती के लिए जल निकासयुक्त हल्की दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। अम्लीय मृदा में भी 4

टन चूना प्रति हेक्टर के प्रयोग से इसकी खेती की जा सकती है। रेशा की उपज में वृद्धि और उत्तम गुणवत्ता का रेशा प्राप्त करने के लिए प्रत्येक चार वर्ष के अन्तराल पर प्रति हेक्टर 750 कि.ग्रा. चूना का प्रयोग करना इसलिए आवश्यक है क्यों कि रेमी के लिए कैल्शियम की आवश्यकता अधिक होती है। जैविक खाद के प्रयोग से मृदा संरचना में सुधार होता है जिसके फलस्वरूप उत्तम किस्म का रेशा और ऊपज में वृद्धि पाई जाती है।

खेत की तैयारी कैसे करें-

रेमी की खेती के लिए खेती की 3-4 गहरी जुताई कर के पाटा चला कर मिट्टी भुरभुरी तथा खेत को समतल कर लेते हैं जिससे खेत में जलरूकाव की समस्या नहीं रहती है। अनावश्यक घास-फूंस या खर-पतवार को खेत में जला देते हैं अथवा खेत के बाहर निकाल कर खेत की सफाई कर देते हैं। अम्लीय मृदाओं में 3 से 4 टन चूना प्रति हेक्टर की दर से बुवाई के पहले मृदा में मिला देते हैं। चूना की मात्रा मृदा की अम्लीयता के परिमाण के अनुसार घटाई या बढ़ाई जा सकती है। शीत काल में बुवाई से पहले 10-15 टन सड़ी हुई गोबर की खाद अथावा कम्पोस्ट या अन्य कार्बनिक खादों का प्रयोग अच्छी उपज के लिए बेहतर रहता है ।

कितनी और कौन सी खाद-

जिस प्रकार रेशा वाली अन्य फसलों के बढ़ाव तथा अधिक उत्पादन और उत्तम किस्म के रेशा की प्राप्ति हेतु जैविक खादों और उर्वरकों की आवश्यकता होती है । रेमी के लिए 33 कि.ग्रा. यूरिया, 100 कि.ग्रा. सुपरफॉस्फेट , 26 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश की मात्रा अनुमोदित की गई है। रेमी की खेती के लिए जैविक खाद का प्रयोग अति लाभदायक सिद्ध हुआ है। रेमी के लिए सड़ी जलकुम्भी की खाद, हरी खाद, गोबर की खाद, कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करना उचित है। रेमी के लिए प्रति हेक्टर 12 टन जैविक खाद के प्रयोग से सूक्ष्म रेशायुक्त अधिक उपज प्राप्त होती है। परीक्षण से प्राप्त जानकारी के अनुसार 100 कि.ग्रा. रेशा उत्पादन के लिए कैल्शियम 12.9 कि.ग्रा., नाइट्रोजन 9.3 कि.ग्रा., फास्फोरस 1.2 कि.ग्रा., पोटाश 4.8 कि.ग्रा. तथा मैग्नीशियम 2.42 कि.ग्रा. की आवश्यकता होती है ।

रेमी का प्रसारण-

रेमी का प्रसारण बीज, तना तथा राइजोम के द्वारा किया जाता है। राइजोम पौधे की मुख्य जड़ से निकल कर मृदा सतह के ठीक नीचे फैला रहता है। कीट-पतंगों द्वारा परागण के कारण बीजों में विभिन्नता आ जाती है जिसके फलस्वरूप पौधों में असमानता आ जाती है और रेशा घटिया/निम्न किस्म का प्राप्त होता है ।

इसकी कब और कैसे करें बुआई-

(अ) रेमी बीज की बुआई-

रेमी का बीज बहुत छोटे आकार का काला रंग का होता है। रेमी के बीज से उत्पन्न पौधे कमजोर तो होते ही हैं साथ ही भविष्य में उनमें चरिभगण लक्षणों के अभाव की संभावना अधिक बढ़ जाती है। रेमी का बीज अत्यन्त छोटा होने के कारण खेत में उसका वितरण/प्रसारण सही और समान ढंग से नहीं हो पाता है। रेमी के पौधों से बीज की मात्रा भी बहुत कम प्राप्त होती है साथ ही बीज बुआई के बाद शस्य क्रियाएं जैसे निराई, गुड़ाई में भी कठिनाई होती है। अत: रेमी का बीज द्वारा प्रसारण उपयुक्त और लाभदायक नहीं हैं ।

(ब) राइजोम की बुआई और परिमाण-

पर्याप्त नमीयुक्त भूमि में सर्वप्रथम चक्रविदा द्वारा 5 से 6 सें.मी. गहरी नाली बना कर उसमें 2 से 3 आंख/अंकुर वाले 10 से 15 सें.मी. लम्बे कटे राइजोम के टुकडों को 30 सें.मी. की परस्र दूरी पर बिछा कर मिट्टी से ढ़क देते हैं। नाली से नाली की दूरी 60 सें. मी. प्रति राइजोम के टुकड़ो की परस्पर दूरी 30 से 45 सें.मी. रखते हैं। इस प्रकार 10 क्विंटल प्रति हेक्टर राइजोम की आवश्यकता होती है। राइजोम की बुआई के लिए वर्षा ऋतु में अप्रैल से सितम्बर तक का समय उपयुत होता है। बुआई के समय मृदा में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। उत्तर बंगाल तथा असम की जलवायु में सिंचाई के साधन उपलब्ध होने पर राइजोम की बुआई पूरे वर्ष भर की जा सकती है।

उन्नत किस्में-

रेमी की 52 संग्रहित प्रजातियों में वोमोरिया नीविया (सफेद रेमी) तथा वलोमेरिया यूटिलिस (हरित रेमी) प्रजाति रेशा की दृाष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ पाई गई है। रेमी की अधिक उपज देने वाली आर.1114, आर.1412, आर.1949, आर.1452, आर. 67-34(कनाई) इत्यादि उन्नत किस्में हैं। रेमी की उपयुक्त जातियों में मांग और गुणवत्ता की दृष्टिकोण से आर 67-34 (कनाई) काफी लोकप्रिय है ।

अन्त: फसलों का चुनाव-

नारियल, सुपारी, रबर, अनारस और चाय की कतारों के मध्य में रेमी की खेती अन्त: फसल के रूप में सरलतापूर्वक की जा सकती है। जाड़े के दिनों में रेमी का बढ़ाव कम होने के कारण गेहूँ तथा सरसो की खेती भी संभव हो सकती है। रेमी का बढ़ाव धूप के दिनों में अधिक होता है जिससे उपज में वृद्धि पाई जाती है परन्तु कम छाया में उपज तो कम प्राप्त होती है लेकिन रेशे की गुणवत्ता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

कीट, व्यधियों से फसल सुरक्षा:

रेमी की फसल में कीट तथा व्यधियों का प्रकोप बहुत कम देखा जाता है। रेमी की पत्तियों पर सरकोस्पोरा (डौम्पिंग ऑफ) रोग का प्रकोप प्राय: पाया जाता है। कभी-कभी केन राट, कलोरोसिस, पत्ती धब्बा, जड़ गांठ, नेमाटोड आदि बीमारियों का प्रकोप भी देखने को मिलता है। इन बीमारियों के नियंत्रण के लिए कीट प्रभावित पौधों को उखाड़ कर फेंक देना चाहिए तथा खेत की निराई-गुड़ाई कर के साफ-सुथरा रखना, कतार में बुआई करना और उपयुक्त फसलचक्र अपनाना बेहतर रहता है। केन राट के नियंत्रण के लिए 0.75 प्रतिशत कॉपर आक्सीकलोराइड को मृदा में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। हेयरी कैटरपिलर, लीफ रोलर, वीटल तथा ककचेखार इत्यादि कीटों के नियंत्रण के लिए 0.04 प्रतिशत इन्डोसल्फान का छिड़काव लाभदायक होता है।

अगर आज हिन्दी राजभाषा मान ली गयी तो वह इसलिए नहीं कि वह किसी प्रांत विशेष की भाषा है, बल्कि इसलिए कि वह अपनी सरलता, व्यापकता तथा क्षमता के कारण सारे देश की भाषा है ।

-स्वामी विवेकानन्द

रोगाणुरोधी प्रतिरोधः मानव और पशु स्वास्थ्य के इंटरफेस पर एक उभरता हुआ सार्वजनिक स्वास्थ्य संकट

संदीप घटक, एएपी मिल्टन, समीर दास, सौरव देवरी, के.के. बरुआ, अर्नब सेन, आरडी शर्मा

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम – 793103, मेघालय

रोगाणुरोधी यौगिक होते हैं जो रखरखाव या प्रतिकृति के लिए आवश्यक सेलुलर कार्यों को लक्षित करके या तो रोगाणुओं के विकास को रोकते हैं या समाप्त करते हैं। व्यवहार में ये एजेंट ऐसी दवाएं हैं जिनका उपयोग मनुष्यों और जानवरों में रोगाणुओं, विशेष रूप से बैक्टीरिया (वायरस या परजीवी के कारण नहीं) के कारण होने वाले संक्रमण के इलाज के लिए किया जाता है। इसलिए रोगाणुरोधी को मानव और पशु स्वास्थ्य के लिए आवश्यक दवा माना गया है।

रोगाणुरोधी प्रतिरोध एक जैविक क्रिया है जहां बैक्टीरिया चिकित्सीय खुराक से अधिक दिए गए एंटीबायोटिक की उपस्थिति में गुणा करते हैं। हाल के वर्षों में कुछ जीवाणुओं द्वारा विभिन्न रोगाणुरोधी हेतु पूर्ण या आंशिक प्रतिरोध किया गया और इससे मानव और पशु दोनों के दवाओं में संक्रमण के उपचार में रोगाणुरोधी की निरंतर प्रभावकारिता पर वैश्विक चिंता जताई गई है।

रोगाणुरोधी दवाओं के प्रतिरोध का उभरना मानव और पशु चिकित्सा में एक मान्यता प्राप्त वैश्विक समस्या है। रोगाणुरोधी एजेंटों के प्रतिरोध को विभिन्न प्रकार के रोगजनकों में पाया गया है और कई दवा प्रतिरोध तेजी से आम होते जा रहे हैं। एंटीबायोटिक प्रतिरोध के विकास और प्रसार के कई प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव हैं। इनमें रोगियों में रुग्णता और मृत्यु दर में वृद्धि, लंबे समय तक अस्पताल में रहना, कम उपचार प्रभावकारिता, उच्च उपचार लागत, प्रयोगशाला परीक्षण लागत में वृद्धि आदि शामिल हैं। अतिसंवेदनशील संक्रमणों से प्रतिरोधी रोगियों की मृत्यु दर, रुग्णता और लागत में 1.3 – 2 गुना के क्रम में प्रलेखित वृद्धि हुई है। इसके अलावा, आम रोगजनकों के बीच बढ़ते प्रतिरोध के कारण अब कई सामान्य संक्रमणों के अनुभवजन्य उपचार के लिए व्यापक स्पेक्ट्रम एजेंटों की आवश्यकता होती है। ये एजेंट आमतौर पर अधिक महंगे होते हैं, सुरक्षा पर सामान्य, माइक्रोफ्लोरा पर अधिक हानिकारक प्रभाव डालते हैं और कभी-कभी रोगियों के लिए अधिक जहरीले हो जाते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में एंटीबायोटिक प्रतिरोध के प्रत्यक्ष प्रभावों की राष्ट्रीय लागत 1995 में प्रति वर्ष $4 बिलियन डॉलर थी। एंटीबायोटिक प्रतिरोधी बैक्टीरिया द्वारा अस्पताल में संक्रमण का एक और अनुमान संयुक्त राज्य अमेरिका में $10 बिलियन, मैक्सिको में $450 मिलियन और थाईलैंड में $40 मिलियन का वार्षिक नुकसान दर्शाता है।

रोगाणुरोधी प्रतिरोध के उद्भव के कई कारकों में, चिकित्सीय और गैर-चिकित्सीय उद्देश्यों के लिए पशुधन क्षेत्र में रोगाणुरोधी के उपयोग को महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रतिरोध उपयोग किए जाने वाले रोगाणुरोधी के प्रकार और मात्रा, इलाज किए गए जानवरों की संख्या और उपचार की अवधि पर निर्भर करता है। उपलब्ध साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि पशुओं से मनुष्यों में प्रतिरोधी रोगाणुओं के फैलने की काफी संभावना होती है क्योंकि कई रोगाणु जानवरों और मनुष्यों के बीच स्वाभाविक रूप से संचरित होते हैं। उदाहरण के लिए, दवा प्रतिरोधी बैक्टीरिया, दूध और दूध उत्पादों के साथ मनुष्यों द्वारा सेवन किया जा सकता है। हालांकि सटीक अनुमान की कमी है, उपलब्ध डेटा इंगित करता है कि विश्व स्तर पर मानव उपचार में उपयोग किए जाने की तुलना में पशुपालन में अधिक रोगाणुरोधी का उपयोग किया जाता है।

डेयरी पशुओं के उपचार के लिए कई एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग किया जाता है और इनमें से अधिकांश का उपयोग मास्टिटिस, आंत्रशोथ, बछड़ा निमोनिया, पैर की सड़न और अन्य बीमारियों के इलाज के लिए किया जाता है। जबकि वास्तविक उपयोग के आंकड़े शायद ही कभी उपलब्ध होते हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका के अध्ययन से संकेत मिलता है कि बीटा-लैक्टम और टेट्रासाइक्लिन को स्पेक्ट्रिनोमाइसिन और फ्लोरफेनिकॉल के साथ सबसे व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले एंटीबायोटिक्स थे। यूरोपीय संघ से उपलब्ध एंटीबायोटिक बिक्री के आंकड़ों से संकेत मिलता है कि खाद्य जानवरों में सबसे अधिक एंटीबायोटिक टेट्रासाइक्लिन का इस्तेमाल किया गया था, इसके बाद पेनिसिलिन और सल्फोनामाइड्स थे। भारत में, समान जानकारी की उपलब्धता दुर्लभ है। हालांकि, डेयरी पशुओं में क्लिनिकल मास्टिटिस में एंटीबायोटिक के उपयोग पर एक हालिया रिपोर्ट से पता चला है कि एनरोफ्लोक्सासिन, एम्पीसिलीन-क्लोक्सासिलिन, जेंटामाइसिन और सेफ्ट्रिएक्सोन उपचार के लिए सबसे लोकप्रिय विकल्प थे। देश की स्थिति में अंतर के बावजूद, भारत में चिकित्सीय विकल्पों के रूप में एंटीबायोटिक दवाओं (जैसे टेट्रासाइक्लिन) की स्पष्ट अनुपस्थिति चिंताजनक है। शायद इससे टेट्रासाइक्लिन के अंधाधुंध उपयोग का संकेत मिलता है जिससे चिकित्सीय प्रभावकारिता में कमी आई है।

दवा प्रतिरोध के इस काली छाया के पीछे कई आनुवंशिक तत्वों का एक जटिल परस्पर क्रिया है जैसे इंटेग्रोन्स, प्लास्मिड, ट्रांसपोज़न, उत्परिवर्तन और विशिष्ट जीन जो प्रजातियों, जेनेरा आदि के बीच फैलने में सक्षम हैं। कई प्रतिरोधी निर्धारकों में से, विस्तारित स्पेक्ट्रम बीटा-लैक्टम प्रतिरोध को एन्कोडिंग करने वाले जीन बहुत महत्वपूर्ण हैं। यह भारतीय उपमहाद्वीप के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि एंटीबायोटिक दवाओं का बीटा-लैक्टम समूह भारतीय एंटीबायोटिक बिक्री पर हावी है। सूक्ष्म वातावरण में रोगाणुरोधी अवशेष और अवशेषों के साथ पर्यावरण प्रदूषण को गैर-लक्षित बैक्टीरिया और क्षैतिज जीन स्थानांतरण के बीच प्रतिरोध को बढ़ावा देने के लिए माना जाता है। हालांकि, विभिन्न दवा अवशेषों के पर्यावरणीय भार पर भारत में वस्तुत: कोई डेटा नहीं है। इसके लिए वास्तव में स्थिति का आकलन करने और पर्यावरणीय अवशेषों और प्रतिरोधी लक्षणों की विशिष्ट अभिव्यक्ति के बीच संबंध को प्रकट करने के लिए कार्रवाई की आवश्यकता है।

बैक्टीरिया के विभिन्न वर्गों में क्षैतिज जीन स्थानांतरण, बैक्टीरिया के बीच प्रतिरोध के प्रसार एक महत्वपूर्ण घटना है तथा सभी स्थानांतरित प्रतिरोध जीन को बनाए नहीं रखा जाता है। जबकि मानव मूल के जीवाणुओं के बीच इस तरह के हस्तांतरण के दस्तावेज सबूत हैं, पौधे और पशु मूल बैक्टीरिया और मानव रोगजनकों के बीच स्थानांतरण और दृढ़ता पर शायद ही कोई रिपोर्ट है।

रोगाणुरोधी दवाओं के दुरुपयोग और अत्यधिक उपयोग के कारण रोगाणुरोधी प्रतिरोध के विकास का जोखिम उत्पादकों, प्रोसेसर, विपणन एजेंसियों, पशु चिकित्सकों, सरकारी एजेंसियों, सार्वजनिक स्वास्थ्य समुदाय और उपभोक्ता आदि सहित प्रत्येक हितधारक से संबंधित है। इसलिए यह सुनिश्चित करना सभी हितधारकों की एक सामान्य जिम्मेदारी है कि रोगाणुरोधी की प्रभावकारिता को संरक्षित करने के लिए विवेकपूर्ण एंटीबायोटिक का उपयोग करें।

रोगाणुरोधी दवाओं का तर्कसंगत उपयोग

अच्छे पशुपालन, जैव-सुरक्षा और स्वास्थ्य रखरखाव के माध्यम से अच्छे प्रबंधन प्रेक्टिस को सुनिश्चित करने से कम एंटीबायोटिक उपयोग की आवश्यकता वाली अधिकांश बीमारियों को रोका जा सकेगा। उपयुक्त स्वास्थ्य प्रबंधन प्रेक्टिस में टीकाकरण, परजीवी नियंत्रण, तनाव में कमी, पोषण प्रबंधन और पर्यावरण प्रबंधन शामिल हैं, लेकिन ये इन्हीं तक सीमित नहीं हैं।

पशुओं के झुंडों में संक्रामक रोगों को रोकने के लिए टीकाकरण एक समय-परीक्षणित रणनीति है। टीकाकरण जानवरों में विशिष्ट बीमारियों के खिलाफ प्रतिरक्षा स्तर को बढ़ाता है जिससे झुंड की प्रतिरक्षा में वृद्धि होती है जो संक्रामक रोगों के प्रसार को सीमित करती है। कई प्रमुख संक्रामक रोग टीके से बचाव योग्य हैं, टीकाकरण डेयरी झुंड में एंटीबायोटिक दवाओं के अनावश्यक उपयोग को कम करने का अवसर प्रदान करता है। पशुओं के लिए अनुचित तनाव को कम करना और पशु कल्याण सुनिश्चित करना डेयरी झुंड की इष्टतम उत्पादकता के लिए महत्वपूर्ण है। संतुलित पोषण के लाभ कई गुना हैं और इसमें दूध उत्पादन की क्षमता और मात्रा में वृद्धि, रुमेन माइक्रोबियल संश्लेषण में वृद्धि, मीथेन उत्पादन में कमी, और सबसे महत्वपूर्ण रूप से पशुओं की प्रतिरक्षा स्थिति में वृद्धि शामिल है।

पशुधन उत्पादन की सफलता के लिए साफ और स्वच्छ वातावरण सुनिश्चित करने के लिए कृषि पर्यावरण का प्रबंधन करना महत्वपूर्ण है। रोग पैदा करने वाले एजेंट (बैक्टीरिया, वायरस, परजीवी) अक्सर अस्वच्छ स्थिति में पनपते हैं और बने रहते हैं और इसलिए फार्म में सफाई और स्वच्छता के लिए कृषि पर्यावरण प्रबंधन एक तार्किक कदम है जो पशु चिकित्सा दवाओं और एंटीबायोटिक दवाओं के उपयोग को भी कम करेगा।

व्यवहार में रोगाणुरोधी दवाओं का विवेकपूर्ण उपयोग

1. रोगाणुरोधी दवाओं का उपयोग केवल तभी किया जाना चाहिए जब दवा देना अत्यधिक आवश्यकता हो।
2. नैदानिक संकेतों, प्रयोगशाला डेटा का इतिहास और अनुभव के आधार पर शामिल रोगज़नक़ की पहचान के लिए ठोस नैदानिक साक्ष्य होना चाहिए।
3. रोगाणुरोधी का चयन लक्षित जीव के लिए विशिष्ट होना चाहिए और उचित खुराक दिया जाना चाहिए।
4. दवा के फार्माकोकाइनेटिक्स और फार्माकोडायनामिक्स पर उचित विचार के उपरान्त उपलब्ध होने पर रोगाणुरोधी उत्पाद का चुनाव प्रयोगशाला निष्कर्षों पर आधारित होना चाहिए।
5. जब भी संभव हो, सबसे संकीर्ण स्पेक्ट्रम वाले रोगाणुरोधी दवाओं का उपयोग किया जाना चाहिए।
6. उपचार व्यवस्था को अनावश्यक रूप से लंबा करने से बचना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि यह स्पष्ट है कि जानवर की प्रतिरक्षा प्रणाली रोग का प्रबंधन कर सकती है, तो रोगाणुरोधी उपचार बंद किया जा सकता है।
7. जब भी संभव हो प्रणालीगत ईलाज की तुलना में स्थानीय अनुप्रयोग को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

8. पशुओं के उपचार के लिए मानव चिकित्सा में कम उपयोग वाले रोगाणुरोधी को ही मनुष्यों में प्रयुक्त दवाओं की तुलना में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

9. रोगाणुरोधी दवाओं के अतिरिक्त- उपयोग से बचना चाहिए।

10. डेयरी व्यवसाय में लगे पशु चिकित्सक को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि दवा की उचित मात्रा जो निर्धारित है, उतनी ही देनी चाहिए ताकि फार्म में रोगाणुरोधी के अनावश्यक भंडार से बचा जा सके।

अधिक जानकारी हेतुः

https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/antimicrobial-resistance
https://www.cdc.gov/drugresistance/index.html
https://ncdc.gov.in/index1.php?lang=1&level=2&sublinkid=384&lid=344
http://www.fao.org/antimicrobial-resistance/background/what-is-it/en/

जैविक खेती तथा उनकी विधियां

सुरेश यादव, संदीप जायसवाल, बृजेश यादव, दिनेश कुमार यादव एवं गणपत लौहार

भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110 012

जैविक खेती का साधारण अर्थ है कि प्रकृति के साथ तालमेल बैठाकर खेती–बाड़ी करना। पिछले दो दशकों से कृषि रसायनों का प्रयोग विभिन्न रूपो में बढ़ता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप भूमि, जल, वायु के साथ–साथ मानवीय विचारों का पर्यावरण बिगड़ता जा रहा है। इस प्रकार कह सकते हैं कि इन सभी समस्याओं का समाधान जैविक खेती में ही निहित है।

भारतवर्ष में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है और कृषकों की मुख्य आय का साधन खेती है। हरित क्रान्ति के समय से बढती हुई जनसंख्या को देखते हुए एवं आय की दृष्टि से उत्पादन बढाना आवश्यक है। अधिक उत्पादन के लिये खेती में अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक का उपयोग करना पड़ता है जिससे छोटे कृषक के पास कम जोत में अत्याधिक लागत लग रही है और जल, भूमि, वायु और वातावरण भी प्रदूषित हो रहा है साथ ही खाद्य पदार्थ भी जहरीले हो रहे हैं। इसलिए इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिये गत वर्षो से निरन्तर टिकाऊ खेती के सिद्धान्त पर खेती करने की सिफारिश की गई है।

जैविक खेती कोई नई पद्धति नही है बल्कि यह भारतीय संस्कृति की पारम्परिक पद्धति है जिसे आधुनिक विज्ञान के समन्वय से पुर्नप्रतिपादित किया गया है। खेती की यह पद्धति फसल चक्र, फसल अवशेष, हरी खाद, कार्बनिक खाद, गोबर की खाद, यान्त्रिक खेती, जैविक कीटनाशकों तथा खनिजधारी चट्टानों के प्रयोग पर निर्भर करती है। जिससे भूमि उत्पादकता तथा उर्वरकता लम्बे समय तक बनी रहती है।

जैविक खेती की उपयोगिता:

जैविक पद्धति न केवल भूमि के स्वास्थ्य बल्कि मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उपयोगी पद्धति है। इसकी उपयोगिता निम्न प्रकार से समझाई ला सकती है।

कृषकों की दृष्टि से लाभ:

- भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है।
- सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती है।
- रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से काश्त लागत में कमी आती है।
- फसलों की उत्पादकता में वृद्धि।

मिट्टी की दृष्टि से लाभ:

- जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है।
- भूमि की जल धारण क्षमता बढती है।
- भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होगा।

पर्यावरण की दृष्टि से लाभ:

- भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है।
- मिट्टी खाद पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है।
- कचरे का उपयोग खाद बनाने में होने से बीमारियों में कमी आती है।
- फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि।
- अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता का खरा उतरना।

जैविक खेती की विधि रासायनिक खेती की विधि की तुलना में बराबर या अधिक उत्पादन देती है अर्थात जैविक खेती मृदा की उर्वरता एवं कृषकों की उत्पादकता बढ़ाने में पूर्णत: सहायक हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में जैविक खेती की विधि और भी अधिक लाभदायक है।

जैविक खाद:

जैविक खादों का तात्पर्य कार्बनिक पदार्थो से है जो सड़ने पर जीवाश्म पदार्थ बनाते हैं। इसमें मुख्यत: कृषि अवशेष, पशु का मलमूत्र आदि होता है, जैसे:

1. **हरी खाद:**

वर्षा काल में खेत में जल्दी बढ़ने वाली दलहनी फसले जैसे ढ़ैचा, सनई, लोविका, ग्वार आदि उगाकर हरी अवस्था में खेत में जुताई करके मृदा में मिला दें।

2. गोबर की खाद
3. गोमूत्र
4. कम्पोस्ट:

(क) ढेर लगाकर कम्पोस्ट बनाना

(ख) गड्ढे में कम्पोस्ट बनाना

(ग) नाडेप कम्पोस्ट

(घ) वर्मी कम्पोस्ट

जैविक खाद तैयार करने की विधियाँ:

नाडेप:- इस विधि को नारायण देवराय पण्डरी पाण्डे द्वारा विकसित किया था। इसलिये इसे नाडेप कहते हैं। इस विधि में कम से कम गोबर का उपयोग करके अधिक मात्रा में अच्छी खाद तैयार की जा सकती है। टंकी भरने के लिये गोबर, कचरा (बायोमास) और वारिक छनी हुई मट्टी की आवश्यकता रहती है। जीवांश को 90 से 120 दिन पकाने में वायु संचार प्रक्रिया का उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा उत्पादित की गई खाद में प्रमुख रूप से 5 से 15 प्रतिशत नत्रजन, 5 से 9 प्रतिशत स्फुर एवं 1. 2 से 1.4 प्रतिशत पोटाश के अलावा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व भी पाये जाते हैं।

पक्का नाडेप ईटों के द्वारा बनाया जाता है। नाडेप टंकी का आकार 10 फीट लम्बा, 6 फीट चौड़ा और 3 फीट ऊँचा या 12 फीटलम्बा, 5 फीट चौड़ा और 3 फीट ऊँचा बनाया जाता है। इंटो को जोड़ते समय तीसरे, छठवें एवं नवें रद्दे में मधुमक्खी के छत्ते के समान 6''-7'' के ब्लॉक/छेद छोड दिये जाते हैं जिससे टंकी के अन्दर रखे पदार्थ को बाह्य वायु मिलती रहे। इससे एक वर्ष में एक ही टंकी से तीन बार खाद तैयार किया जा सकता हैं।

भू-नाडेप कच्चा नाडेप परम्परागत तरीके के विपरीत बिना गड्ढा खोदे जमीन पर एक निश्चित आकार (12 फीट लम्बा, 5 फीट चौड़ा और 3 फीट ऊँचा अथवा 10 फीट लम्बा, 6 फीट चौड़ा और 3 फीट ऊँचा) का ले आउट देकर व्यवस्थित ढेर बनाया जाता है। इससे भराई नाडेप टंकी अनुसार की जाती है। इस प्रकार लगभग 5 से 6 फीट तक सामग्री जम जाने के बाद एक आयताकार व व्यवस्थित ढेर को चारों और से गीली मिट्टी व गोबर से लीप कर बंद कर दिया जाता है। बंद करने के दूसरे अथवा तीसरे दिन जब गीली मिट्टी कुछ कडी हो जाये तब गोलाकार अथवा आयताकार टिन के डिब्बे से ढेर की लम्बाई व चौड़ाई में 7-8 इंच के गहरे छिद्र बनाये जाते हैं। छिद्रों से हवा का आवागमन होता है और आवश्यकता पड़ने पर पानी भी डाला जा सकता है, ताकि बायोमास 3 से 4 माह के भीतर भली-भाँति पक जाता है तथा अच्छी तरह पकी हुई भुरभुरी दुर्गन्ध रहित भूरे रंग की उत्तम गुणवत्ता की जैविक खाद तैयार हो जाती है।

टटिया नाडेप भी भू- नाडेप की तरह ही होते हैं, किन्तु इसमें आयताकार व व्यवस्थित ढेर को चारों और से लेप देने की जगह इसे बांस, बेशरम की लकड़ी एवं तुअर के डंठल आदि से टटियां बनाकर चारो और से बंद कर दिया जाता है। इसमें हवा का आवागमन स्वभाविक रूप से छेद होने के कारण अपने आप ही होता रहता है।

वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने की विधि-

कचरे से खाद तैयार किया जाता है उसमें से कांच, पत्थर, धातु के टुकडे अच्छी तरह अलग कर इसके पश्चात वर्मी कम्पोस्ट तैयार करने के लिए 10 x 4 फिट का प्लेटफार्म जमीन से 6 से 12 इन्च तक उंचा तैयार किया जाता हैं। इस प्लेटफार्म के उपर दो रद्दे ईंट के

जोड़े जाते हैं तथा प्लेटफार्म के उपर छांया हेतु झोपड़ी बनाई जाती है। प्लेटफार्म के उपर सुखा चारा 3-4 क्विंटल गोबर की खाद तथा 7-8 क्विंटल कुड़ा करकट (गार्बेज) बिछाकर झोपड़ीनुमा आकार देकर अधपका खाद तैयार हो जाता है जिसकी 10-15 दिन तक झारे से सिंचाई करते हैं जिससे कि अधपके खाद का तापमान कम हो जाए। इसके पश्चात 100 वर्ग फीट में 10 हजार केंचुए मिलाते हैं। इसके पश्चात टंकी को जुट के बोरे से ढंक दिया जाता है और 4 दिन तक झारे से सिंचाई करते रहते हैं ताकि 45-50 प्रतिशत नमी बनी रहे। ध्यान रहे कि अधिक गीलापन रहने से हवा अवरूद्ध हो जाएगी और सूक्ष्म जीवाणुं तथा केंचुए मर जायेंगे।

45 दिन के पश्चात सिंचाई करना बंद कर दिया जाता है और जूट के बोरो को हटा दिया जाता है। बोरो को हटाने के बाद उपर का खाद सूख जाता है तथा केंचुए निचे चले जाते हैं। तब उपर की सूखी हुई वर्मी कम्पोस्ट को अलग कर लेते हैं। इसके 4-5 दिन पश्चात पुन: टंकी की उपरी खाद सूख जाती हैं और सूखी हुई खाद को अलग कर लेते हैं। इस तरह 3-4 बार में पूरी खाद टंकी से अलग हो जाती हैं और आखिरी में केंचुए बच जाते हैं जिनकी संख्या दो माह में टंकी में डाले गए केंचुओं की संख्या से दोगुनी हो जाती हैं। ध्यान रखे की खाद हाथ से निकाले गेंती, कुदाल या खुरपी का प्रयोग ना करें। टंकी से निकाले गये खाद को छांया में सुखाकर छानकर छायादार स्थान में भंडारित किया जाता है। वर्मी कम्पोस्ट की मात्रा गमलों में 100 ग्राम, एक वर्ष के पौधों में 1 किलोग्राम तथा फसल में 6-8 क्विंटल प्रति एकड की आवश्यकता होती है। वर्मी वॉश का उपयोग करते हुए प्लेटफार्म पर दो निकास नालियां बना देना अच्छा होगा ताकि वर्मी वॉश को एकत्रित किया जा सके।

केंचुए खाद के गुण:

- इसमें नत्रजन, स्फुर, पोटाश के साथ अतिआवश्यक सूक्ष्म कैल्शियम, मैग्निशियम, तांबा, लोहा, जस्ता और मोलिवडेनम तथा बहुत अधिक मात्रा में जैविक कार्बन पाया जाता हैं।
- केंचुए के खाद का उपयोग भूमि, पर्यावरण एवं अधिक उत्पादन कि दृष्टि से लाभदायक हैं।

हरी खाद:

मिट्टी की उर्वरा शक्ति जीवाणुओं की मात्रा एवं क्रियाशीलता पर निर्भर रहती हैं क्योंकि बहुत सी रासायनिक क्रियाओं के लिए सूक्ष्म जीवाणुओं की आवश्यकता रहती हैं। जीवित व सक्रिय मिट्टी वह कहलाती हैं जिसमें अधिक से अधिक जीवांश हो। जीवाणुओं का भोजन प्राय: कार्बनिक पदार्थ ही होते हैं और इनकी अधिकता से मिट्टी की उर्वरा शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। अर्थात केवल जीवाणुओं से मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने की क्रियाओं में हरी खाद प्रमुख हैं। इस क्रिया में वानस्पतिक सामग्री को अधिकांशत: हरे दलहनी पौधों को उसी खेत में उगाकर जुताई कर मिट्टी में मिला देते हैं। हरी खाद हेतु मुख्य रूप से सन, ढेचा, लोबिया, उडद, मूंग इत्यादि फसलों का उपयोग किया जाता हैं।

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश के लिए आवश्यक हैं।

- महात्मा गाँधी

पादप विषाणुः खाद्य और पोषाहार सुरक्षा के लिए खतरा

सुशील कुमार शर्मा[1], ओइनम प्रियोदा देवी[1], सुभ्रा सैकत रॉय[1], संदीप घटक[2] और राम दयाल शर्मा[2]

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, मणिपुर केंद्र, लम्फेलपत, इंफाल, मणिपुर - 795004, भारत

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियाम, मेघालय - 793103, भारत

पादप विषाणु उप-सूक्ष्म रोगजनकों के समूह हैं जो विभिन्न पौधों की प्रजातियों को संक्रमित करते हैं और जिन्हें नियंत्रित करना सबसे चुनौतीपूर्ण होता है। वायरस बाध्यकारी परजीवी हैं और उन्हें बढ़ने और गुणा करने के लिए एक जीवित मेजबान की आवश्यकता होती है। वे प्रकाश सूक्ष्मदर्शी से देखने के लिए बहुत छोटे हैं, लेकिन उनके छोटे आकार के बावजूद वे आमतौर पर विनाशकारी होते हैं। वायरस कई महत्वपूर्ण पौधों की बीमारियों का कारण बनते हैं और दुनिया भर में उपज और गुणवत्ता के मामले में फसलों को महत्वपूर्ण नुकसान के लिए जिम्मेदार हैं। पादप विषाणुओं का काफी आर्थिक महत्व है क्योंकि उनमें से कई खाद्य, सब्जियों, फलों और सजावटी फसलों के पौधों को संक्रमित करते हैं, जिससे दुनिया भर में हर साल फसल की पैदावार में 60 बिलियन अमेरिकी डॉलर का अनुमानित नुकसान होता है।

प्लांट वायरोलॉजी की शुरुआत 19वीं सदी के उत्तरार्ध में हुई, जब डच माइक्रोबायोलॉजिस्ट मार्टिनस बेजेरिन्क और रूसी शोधकर्ता दिमित्री इवानोव्स्की, तंबाकू की एक रहस्यमय बीमारी के कारण की जांच कर रहे थे। उन्होंने पाया कि यह विशेष एजेंट अन्य रोग पैदा करने वाले सूक्ष्म जीवों की तुलना में आकार में बहुत छोटा था। यह एजेंट, जिसे बाद में तंबाकू मोज़ेक वायरस (टीएमवी) नाम दिया गया, इस ग्लोब पर वर्णित होने वाला पहला वायरस था। तब से, बड़ी संख्या में विविध वायरस पाए गए हैं जो पौधों, जानवरों, फन्जाई और बैक्टीरिया को संक्रमित करते हैं। शैक्षणिक हितों के अलावा, कृषि उत्पादों को बचाने के लिए विषाणुओं का नियंत्रण, पादप विषाणुओं के अध्ययन का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। वायरस न्यूक्लिक एसिड (या तो आरएनए या डीएनए) से बने होते हैं जो प्रोटीन शेल में पैक होते हैं, जिससे वायरस कण बनते हैं। एक बार एक घायल कोशिका में, वायरस कण अपने प्रोटीन कोट को छोड़ देता है और न्यूक्लिक एसिड फिर स्वयं और संबंधित प्रोटीन की कई प्रतियों के उत्पादन को निर्देशित करता है जिससे नए वायरस कणों का विकास होता है। वायरस अपने मेजबान सेल की पूरी सेलुलर मशीनरी को बंद कर देते हैं और इसे अपने गुणन के लिए फिर से निर्देशित करते हैं। चूंकि वायरस की अपनी कोई कोशिका नहीं होती है, इसलिए उन्हें प्रबंधित करना सबसे कठिन कार्यों में से एक है।

अधिकांश पादप विषाणु रॉड के आकार के होते हैं, जिनमें प्रोटीन डिस्क वायरल जीनोम के चारों ओर एक ट्यूब बनाते हैं; आइसोमेट्रिक कण एक और सामान्य संरचना है। उनके पास शायद ही कभी एक एन्वेलप होता है। अधिकांश में आरएनए जीनोम होता है, जो आमतौर पर छोटा और सिंगल स्ट्रैंडेड (एसएस) होता है, लेकिन कुछ वायरस में डबल स्ट्रैंडेड (डीएस) आरएनए, एसएसडीएनए या डीएसडीएनए जीनोम होते हैं। पादप विषाणुओं को 73 जेनेरा और 49 फैमिली में बांटा गया है। हालांकि, ये आंकड़े केवल खेती वाले पौधों से संबंधित हैं, जो पौधों की कुल प्रजातियों की कुल संख्या का केवल एक छोटा सा अंश दर्शाते हैं। जंगली पौधों में वायरस का अच्छी तरह से अध्ययन नहीं किया गया है, लेकिन जंगली पौधों और उनके वायरस के बीच परस्पर संबंध अक्सर मेजबान पौधों में बीमारी का कारण नहीं बनते हैं। अकेले भारत में 168 पौधों के वायरस प्रजातियों का दस्तावेजीकरण किया गया है, जिनमें से जेनेरा, बेगोमोवायरस, कुकुमोवायरस, पॉटीवायरस और टोस्पोवायरस से संबंधित वायरस आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। पौधों सामग्री और उपज का आयात और निर्यात, कार्यबलों की आवाजाही और स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र में नई फसलों की शुरूआत के परिणामस्वरूप अक्सर नए वायरस रोगों का तेजी से विकास होता है।

एक पौधे से दूसरे पौधे में और एक पादप कोशिका से दूसरे में संचारित करने के लिए, पादप विषाणुओं को रणनीतियों के तहत उपयोग करना चाहिए जो आमतौर पर पशु विषाणुओं से भिन्न होती हैं। अधिकांश पादप विषाणु एक स्वस्थ पौधे के साथ एक घायल पौधे के संपर्क से सैप के सीधे हस्तांतरण द्वारा फैल सकते हैं। इस तरह के संपर्क कृषि पद्धतियों के दौरान हो सकते हैं, जैसे कि उपकरण या हाथों से होने वाली क्षति, या स्वाभाविक रूप से, जैसे कि पौधे को किसी जानवर के खाने से हो जाता है। वे आम तौर पर एक वेक्टर अक्सर एफिड, थ्रिप्स, व्हाइटफ्लाई, लीफहोपर इत्यादि जैसे कीड़ों द्वारा संचरित होते हैं। पौधे वायरस के चुने हुए कीट वेक्टर अक्सर उस वायरस की मेजबान सीमा में निर्धारण कारक होंते हैं: वे केवल पौधों को संक्रमित कर सकते है जो कीट वेक्टर फ़ीड करता है। यह उस हिस्से में दिखाया गया था जब पुराने समय में सफेद मक्खी ने इसे संयुक्त राज्य अमेरिका में बनाया था, जहां इसने कई पौधों के वायरस को नए मेजबानों में स्थानांतरित कर दिया था। जिस तरह से वे प्रसारित होते हैं, उसके आधार पर, पौधे के वायरस को गैर-स्थायी, अर्ध-

स्थायी और स्थायी के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। मृदा जनित सूत्रकृमि भी विषाणु संचारित करने के लिए दिखाए गए हैं। वे संक्रमित जड़ों को खाकर उन्हें नष्ट करते हैं और प्रसारित करते हैं। जब वे संक्रमित पौधे को खाते हैं तो विषाणु स्टाइललेट (खाया हुआ भाग) या आंत से जुड़ जाते हैं और बाद में अन्य पौधों को संक्रमित करने के बाद अलग हो सकते हैं। नेमाटोड द्वारा प्रसारित किए जा सकने वाले वायरस के उदाहरणों में तंबाकू रिंगस्पॉट वायरस और तंबाकू रैटल वायरस शामिल हैं। पादप विषाणुओं का कोशिका-से-कोशिका संचलन प्लास्मोडेसमाटा नामक कोशिकाओं के बीच साइटोप्लाज्मिक 'ब्रीज' के माध्यम से होता है और फ्लोएम के माध्यम से संक्रमित पौधों में व्यवस्थित रूप से चलता है।

वर्तमान सहस्त्राब्दी में, पौधों के वायरस का अध्ययन नई गहराई तक पहुंच गया है, जहां वायरस जीनोमिक्स और कार्यात्मक जीनोमिक्स की समझ ने वायरस के संक्रमण से बचाव के लिए पौध की क्षमता को मजबूत करने के लिए बेहतर रणनीति विकसित करने के नए अवसर खोले दिए हैं। पर्यावरण और जलवायु की स्थिति में बदलाव के साथ न केवल नए उभरते वायरस गंभीर समस्याएं पैदा करते हैं बल्कि पुराने और जाने-माने वायरस अभी भी महत्वपूर्ण आर्थिक नुकसान के लिए जिम्मेदार हैं। इसका एक उदाहरण आलू वायरस वाई है, जो पहले से ही 50 से अधिक वर्षों से जाना जाता है और अभी भी दुनिया भर में बीज आलू उत्पादन में एक प्रमुख चिंता का विषय है।

पादप विषाणुओं का प्रबंधन काफी हद तक सटीक निदान, रोगवाहकों को नियंत्रित करने और उपयुक्त प्रबंधन उपायों का अभ्यास करने पर निर्भर करता है। रणनीतियों में प्रभावी फाइटोसैनिटरी नियंत्रण उपायों के विकास; समस्या की पहचान, महामारी विज्ञान के आंकड़े एकत्र करना, पता लगाने की तकनीकों का विकास में समय लगता है। अक्सर पौधे के वायरस और उनके वाहक तेजी से आगे बढ़ते हैं और जल्दी से खुद को स्थापित कर सकते हैं। उन्मूलन लगभग असंभव हो जाता है और प्रभावित क्षेत्रों के बाहर इसके और फैलने का जोखिम बहुत वास्तविक है।

इसे सक्षम करने के लिए, पर्याप्त पहचान और पहचान के तरीके अपरिहार्य हैं। पिछले 50 वर्षों में बहुत ही कुशल और लागत प्रभावी तरीके विकसित किए गए हैं जिसने छोटे और बड़े पैमाने पर परीक्षण योजनाओं में अपनी योग्यता साबित की है। पिछले दस वर्षों में संवेदनशीलता में सुधार के उद्देश्य से, रीयल-टाइम पीसीआर और मल्टीप्लेक्स माइक्रो एरे सिस्टम जैसे नए आणविक-आधारित परीक्षणों के विकास में रुचि बढ़ रही है। इस प्रकार के शोध के लिए बहुत सारे शोध प्रयास और धन का उपयोग किया जा रहा है। फिर भी, तेजी से तकनीकी विकास के बावजूद, इनमें से केवल कुछ ही परीक्षण लागू किए गए हैं और उनमें से कोई भी बड़े पैमाने पर नहीं है। अधिक पारंपरिक तकनीकों की तुलना में प्रति परीक्षण औसत मूल्य अभी भी (बहुत) अधिक है, लेकिन दोहराने योग्य और विश्वसनीय नमूना-निष्कर्षण और सीमित समय में बड़ी संख्या में नमूनों के हाई-थ्रूपुट परीक्षण से संबंधित समस्याएं अभी तक पर्याप्त रूप से हल नहीं हुई हैं।

एलिसा जैसे विश्वसनीय और उपयोग में आसान तरीकों के वायरस परीक्षणों की अभी भी आवश्यकता है। संवेदनशीलता और विशिष्टता के संबंध में मजबूत और अपेक्षाकृत आसानी से अप-स्केलेबल सीरोलॉजिकल तकनीक अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत मानकों को बनाए रखते हुए बहुत स्वीकार्य कीमतों पर बड़े पैमाने पर अनुक्रमण और गुणवत्ता नियंत्रण कार्यक्रमों की अनुमति देती है। इन तकनीकों के उपयोग हेतु उच्च गुणवत्ता वाले सीरोलॉजिकल डायग्नोस्टिक्स की आवश्यकता होती है। हालांकि, इन एंटीसेरा का उत्पादन अधिक से अधिक समस्याग्रस्त होता जा रहा है, न केवल जीवित जानवरों के उपयोग से संबंधित अधिक सख्त नियमों के कारण, बल्कि मुख्य रूप से इसलिए कि आवश्यक वायरस को चिह्नित करने और शुद्ध करने के लिए आवश्यक विशेषज्ञता बहुत तेजी से कम हो रही है। आजकल कुछ पादप विषाणु विज्ञान समूह अभी भी उच्च पर्याप्त विशिष्टता के एंटीसेरा का उत्पादन करने में सक्षम हैं, विशेष रूप से नए और अनैच्छिक विषाणुओं के लिए या उन विषाणुओं के लिए जिन्हें शुद्ध करना इतना आसान नहीं है। विशिष्ट एंटीसेरा-जैसे फेज डिस्प्ले सिस्टम का उत्पादन करने के लिए नई, अक्सर आणविक-आधारित तकनीकें अभी भी अपने वादे और यहां तक कि मोनोक्लोनल एंटीबॉडी पर खरी नहीं उतरी हैं, बावजूद इसके कि मेडिकल डायग्नोस्टिक्स में उनके सिद्ध ट्रैक रिकॉर्ड का आमतौर पर प्लांट वायरस डायग्नोस्टिक्स में उपयोग नहीं किया जाता है। उच्च गुणवत्ता वाले एंटीसेरा के विकास के साथ-साथ नए निदान के आकलन और गुणवत्ता-आश्वासन के लिए, अच्छी तरह से परिभाषित और विशेषता वाले पौधे वायरस उपभेद और आइसोलेट्स अनिवार्य हैं।

मनुष्यों और जानवरों की तरह, पौधों का 'टीकाकरण' किया जा सकता है। इसका एक उदाहरण दुनिया भर में वितरित किया गया, वह है साइट्रस ट्रिस्टेज़ा वायरस (सीटीवी) जिसके कारण पौधो में होने वाले साइट्रस के ट्रिस्टेज़ा रोग का नियंत्रण किया गया। इस वायरस के गंभीर उपभेदों से संक्रमित होने पर, साइट्रस की अधिकांश किस्में मर जाती हैं। एक समय में, एक प्रमुख साइट्रस उत्पादक देश ब्राजील में साइट्रस उद्योग वायरस से तबाह हो रहा था। हालांकि, शोधकर्ताओं ने देखा कि सीटीवी के हल्के स्ट्रेन से संक्रमित पेड़ गंभीर या किलर स्ट्रेन से संक्रमित नहीं थे, और फलों की पैदावार पर कोई खास असर नहीं पड़ा। इसलिए, वायरस के हल्के उपभेदों वाले स्वस्थ पेड़ों का बड़े पैमाने पर टीकाकरण ('टीकाकरण') किया गया और ब्राजील के साइट्रस उद्योग को बचाया गया। पौधों के विषाणुओं के लिए

टिकाऊ प्रतिरोध हमेशा फसल पौधों में उपलब्ध नहीं होता है और अक्सर खतरा होता है कि एक नया वायरस तनाव विकसित हो सकता है, जो प्रतिरोध लक्षणों पर काबू पाने में सक्षम है। इसलिए पादप विषाणु रोगों को नियंत्रित करने के लिए कई प्रणालियाँ विकसित की गई हैं। आम तौर पर, ये संक्रमण को रोकने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इसका अर्थ है स्वच्छता प्रोटोकॉल का कार्यान्वयन और स्वच्छ बीजों का उपयोग और रोपण सामग्री का विकास।

पुरानी प्रजनन प्रक्रिया के माध्यम से विकसित प्रतिरोधी किस्मों को अन्य रोगजनकों के प्रबंधन के लिए सफलतापूर्वक उपयोग किया गया था। हालांकि, वायरस के खिलाफ प्रतिरोध के लिए प्रजनन को भी उन्हें प्रबंधित करने का सबसे अच्छा तरीका माना जाता है, प्रतिरोध के उपयोगी स्रोतों की उपलब्धता की कमी और तेजी से विकसित हो रहे वायरस, उनके रूपों और उपभेदों की बड़ी विविधता के कारण सीमित सफलताएं मिली। 1980 के दशक में, पॉवेल ने आनुवंशिक इंजीनियरिंग दृष्टिकोण का उपयोग करते हुए क्रॉस प्रोटेक्शन के समान एक रोगज़नक़ व्युत्पन्न प्रतिरोध का प्रदर्शन किया। इंजीनियरिंग प्रतिरोध में वायरस जीनोम के कुछ हिस्सों का उपयोग करके फसल के पौधे का आनुवंशिक संशोधन किया गया, जिसे लोकप्रिय रूप से ट्रांसजेनिक प्रतिरोध के रूप में जाना जाता है। यह पौधों की प्रजातियों को संक्रमित करने वाले कई वायरस के खिलाफ सफल साबित हुआ है। हालाँकि, नियामक मुद्दों और संबंधित आशंकाओं ने भारत सहित कई देशों में ट्रांसजेनिक तकनीक को अपनाने को काफी हद तक हतोत्साहित किया।

कई स्थापित और स्वीकृत प्लांट वायरस संग्रह जिनमें इससे संबंधित सामग्री को बनाए रखा गया था, आजकल मुख्यत: बजटीय कारणों से गंभीर खतरे में है । हालांकि ये संग्रह नए और पुराने वायरस की समस्याओं की पहचान और लक्षण वर्णन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे पहचान और पहचान विधियों के विकास और सत्यापन के लिए और मान्य और मान्यता प्राप्त नैदानिक विधियों के लिए आवश्यक 'सुनहरे मानकों' के विकास और उपलब्धता के लिए भी आवश्यक हैं। हाल के वर्षों में भारत सहित वैश्विक स्तर पर कई शोध प्रयोगशालाएं बेहतर सरलीकृत पहचान परख के विकास के साथ आई हैं जिनका उपयोग सीमित संसाधनों और विशेषज्ञता के साथ प्रयोगशालाओं में किया जा सकता है। उत्तर पूर्व भारत में, भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर ने नियमित वायरस का पता लगाने और अनुक्रमण के लिए अत्याधुनिक सुविधाओं का विकास किया है। संस्थान उत्तर पूर्वी भारत के लिए महत्वपूर्ण साइट्रस, मिर्च, पैशन फ्रूट, केला, खीरा और अन्य फसलों को संक्रमित करने वाले वायरस के लिए सरलीकृत डिटेक्शन एसेज़ के लक्षण वर्णन और विकास में अग्रणी रहा है। इस क्षेत्र में विभिन्न फसलों को संक्रमित करने वाले उभरते विषाणुओं के लक्षण वर्णन के अलावा, भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर विभिन्न फसलों में वायरस के संक्रमण का पता लगाने और अनुक्रमण, बड वुड प्रमाणन और वायरस मुक्त रोपण सामग्री के उत्पादन के लिए एक केंद्र के रूप में भी काम कर रहा है। पादप विषाणु अध्ययनों का भविष्य और उनका प्रबंधन अधिक सरलीकृत और ऑन-साइट नैदानिक परखों के विकास में निहित है। नई तकनीकों का उपयोग जैसे डबल स्ट्रेंडेड आरएनए (पौधों में आरएनए वैक्सीन के समान) और लक्षित जीनोम एडिटिंग का फील्ड में अनुप्रयोग अवश्यक है। अनुसंधान प्रयासों के अलावा, प्रशिक्षित मानव संसाधन विकसित करना भी महत्वपूर्ण है जो काम के साथ साथ वायरस और उसके खतरे का प्रबंधन कर सकते हैं व जो खाद्य और पोषण सुरक्षा के लिए कारण बनते हैं।

आगे की रीडिंग

1. हल आर. 2009. तुलनात्मक पादप वायरोलॉजी. अकादमिक प्रेस, 2009.आईएसबीएन: 9780080920962.
2. जोन्स, आरएसी, नायडू, आरए. 2019 पादप विषाणु रोगों के वैश्विक आयाम: वर्तमान स्थिति और भविष्य के दृष्टिकोण. वायरोलॉजी की वार्षिक समीक्षा, 6, 387-409.
3. जोन्स, आरएसी. 2021. वैश्विक पादप विषाणु रोग महामारियाँ और संक्रामक रोग। पौधे, 10, 233. https—//doi.org/10.3390/plants10
4. मंडल बी, राव जी पी, बरनवाल वी के और जैन आर के. 2017. भारत में प्लांट वायरोलॉजी की एक सदी. आईएसबीएन 978-98 1-10-5671-0, स्प्रिंगर नेचर सिंगापुर प्राइवेट लिमिटेड 2017, पृष्ठ 805.

विंग्ड बीन की खेती: किसानों के लिए वरदान

जीतेन्द्र कुमार सोनी, सुनील सुननी, लुंगमुआना, अमित कुमार, विशम्भर दयाल एवं आई शकुंतला

विंग्ड बीन [*Psophocarpus tetragonolobus* (L.) DC.] एक स्वपरागित उष्णकटिबंधीय बीन है, जो कि फैबेसी परिवार में आती है। यह आमतौर पर भारत के दक्षिणी और उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में उगाई जाती है, यानी यह मिजोरम, मणिपुर, त्रिपुरा और इसके आसपास के क्षेत्रों पर स्थानीय लोगों द्वारा उगाई एवं सेवन की जाती है। विंग्ड बीन 'वन स्टॉक सुपरमार्केट' या 'वन स्पिशीज सुपरमार्केट' के नाम से भी लोकप्रिय है, क्योंकि इसके पत्ते, फली, हरे एवं सूखे बीज, कंद और यहां तक कि फूल भी खाने योग्य होते है, इसके अलावा तने और पत्तियों का उपयोग चारे के रूप में किया जाता है। अत: इस पौधे का प्रत्येक भाग खाने योग्य और पोष्टिकता से भरपूर होता है।

मॉर्फोलॉजी

चित्र1: विंग्ड बीन पौधे के विभिन्न भाग; (क) बीज (ख) फूल (ग) पौधा (घ) मुलायम फली (ङ) पकी फली (च) कंद

विंग्ड बीन एक लतानुमा एवं स्व-परागित पौधा है जो 3-5 मीटर की ऊंचाई तक चढ़ सकता है, इसके फूल 2.5 से 3.5 सेमी चौड़ाई के साथ विभिन्न रंगों के पाये जाते है जिसमे बैंगनी, सफेद, नीला और लाल मुख्य होते है, वहीं इसके बीज मुख्यत: भूरे और काले होते है (चित्र1)। इसमें, प्रतिफली लगभग 6-15 बीज होते है तथा फल चार कोनों वाली लम्बी फली के आकार का होता है। प्रत्येक फली 15 से 30 सेमी लम्बी और लगभग 3 सेमी चौड़ी होती है। इसकी जड़ें कंदयुक्त होती हैं; एक कंद की लम्बाई लगभग 8 से 12 और चौड़ाई 2 से 4 सेमी के बीच होती है।

पौष्टिक्ता

बीजों में लगभग 40% और कंदो में लगभग 20% प्रोटीन होता है। इसके अलावा बीज में P, K, Ca, Mg, S, Fe, Mn, B, Zn, Cu, Na, Ba, Cr, Sr और विटामिन जैस A, B1, B2, B3, B6, B9, C एवं E सहित खनिजों से भरपूर होते हैं, जो मानव पोषण के लिए बहुत आवश्यक है। इसमें अमीनो एसिड की मात्रा सोयाबीन एवं फैटी एसिड का संयोजन मूंगफली के समान होता है।

विंग्ड बीन के उपयोग

विंग्ड बीन का प्रत्येक भाग खाने योग्य और पोषक तत्वों से भरपूर होता है इसलिए यह अपने लाभकारी गुणों और उपयोगों के कारण किसानों और उपभोक्ताओं के बीच काफी प्रचलित है। इसके बीजों को सोयाबीन की तरह तथा कंद को कच्चा, उबालकर या भूनकर खाया जा सकता है, वहीं फूल और कोमल फली को सलाद के साथ-साथ पकी हुई सब्जी के रूप में इस्तेमाल किया जाता है, और पत्तियों को भी पालक की तरह उपयोग मे लाया जा सकता है। इसके फूलों का स्वाद मीठा होता है और कंद प्रोटीन के साथ साथ कई पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। यह पौधा मवेशियों के लिए भी अच्छा चारा है।

जलवायु

विंग्ड बीन उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय जलवायु में अच्छी तरह से उगाया जाता है। यह प्रकाशसुग्राही है और प्रजनन के समय इसको छोटे दिनों की आवश्यकता होती है। विंग्ड बीन पाले के प्रति संवेदनशील होता है, तथा यह लंबे समय तक सूखा को बर्दाश्त नहीं कर सकता, लेकिन कम शुष्क मौसम फसल को प्रभावित नहीं करता है।

मृदा

विंग्ड बीन को विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है लेकिन अच्छी जल निकासी वाली दोमट मिट्टी और 6.5-7.5 पीएच वाली अम्लीय मिट्टी इसकी उपज के लिए बेहतर होती है। हालाँकि, ज्यादा गीली मिट्टी इसके विकास एवं अंकुरण के लिए उपयुक्त नहीं है।

खाद और उर्वरक

खेत की तैयारी के समय 10-15 टन अच्छी तरह विघटित गोबर या केंचुआ खाद के अलावा बुवाई के समय 20 किलो नाइट्रोजन, 40 किलो फास्फोरस और 20 किलो पोटाश की आवश्यकता प्रति हेक्टेयर होती है।

किस्म

विंग्ड बीन की मुख्य किस्मे AKWB-1, RMDWB-1 एवं IWB-1 है।

बुवाई का समय, बीज दर और पौधों के बीच दूरी

बीज को 48 घंटे तक भिगोने से जल्दी और एक समान अंकुर निकलने में मदद मिलती है। 25 डिग्री सेल्सियस पर पहले से भिगोया हुआ बीज 5-6 दिनों के बाद अंकुरित होता है। मिजोरम में बुवाई का उपयुक्त समय मई से जून है या मानसून के शुरू होने पर माना जाता है, इसमें बीज दर 15-20 किलो प्रति हेक्टेयर होती है, वहीं किस्म और जलवायु कारकों के आधार पर, पंक्ति म पौधे के बीच उचित दूरी 60 - 90 × 30-45 सेमी मानी गई है।

ट्रेनिंग प्रणाली

विंग्ड बीन एक लता नुमा पौधा है जो ट्रेनिंग प्रणाली के लिए सकारात्मक प्रतिक्रिया देता है (चित्र 2)। अंकुरण के कुछ दिनों बाद से ही इसको ट्रेनिंग प्रणाली की जरूरत होती है, जो फली की उपज एवं फली की गुणवत्ता में सुधार हेतु अति आवश्यक है, इसके अलावा यह इंटरकल्चरल कार्य में सुविधा प्रदान करता है एवं रोगों और कीटों के कारण होने वाले नुकसान को कम करता है।

चित्र 2: विंग्ड बीन पौधों में ट्रेनिंग प्रणाली

निराई-गुड़ाई

चूंकि विंग्ड बीन की प्रारंभिक वृद्धि धीमी होती है, इसलिए विकास के पहले 4-6 सप्ताहों में यह खरपतवार प्रतियोगिता के लिए अतिसंवेदनशील होती है। इसलिए ट्रेनिंग प्रणाली से सपोर्ट सिस्टम लगाने के पूर्व दो बार निराई-गुड़ाई करने की सलाह दी जाती है ।

फसल की अवधि

किस्मो/जीनोटाइप और मौसम की स्थिति के आधार पर, फसल के परिपक्व होने की अवधि भिन्न होती है। आमतौर पर बुवाई से 50 प्रतिशत तक फूल आने में 55-80 दिन का समय लगता है। फसल की अवधि फसल के अंतिम उत्पाद पर आधारित होती है ।

कटाई और उपज

विंग्ड बीन फली को 15-20 सेंटीमीटर लंबे और 2-3 सेंटीमीटर मोटे होने पर काटा जाता है। हरी फलियों की पहली तुड़ाई बुवाई के 70-90 दिनों के उपरांत और अगली तुड़ाई पहली तुड़ाई के 5 से 6 दिनों के अंतराल पर संभव है। विंग्ड बीन की हरी फली की उपज लगभग 50-120 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होता है, जो कि फसल कि किस्म, उसकी भौगोलिक तथा मौसमी, प्रकृति एवं फसल प्रबंधन पर आधारित है।

बीज उत्पादन

विंग्ड बीन मूल रूप से एक स्व-परागण आधारित फसल है, लेकिन इसमें लगभग 5 प्रतिशत या उससे कम प्राकृतिक आउट-क्रॉसिंग होने की सम्भावना होती है। भौतिक मिश्रण से बचने के लिए दो किस्मों के बीच 50 मीटर की दूरी होना आवश्यक है। विंग्ड बीन के बीज का उत्पादन सब्जी की फसल की तरह ही किया जाता है और फली को पौधों पर पकने दिया जाता है (चित्र 3)। बीज की उपज लगभग 15-25 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है और इसका मानक उत्पादन प्राप्त करने के लिए फसल को दो बार निगरानी की आवश्यकता होती है, पहला फूल आने के समय और दूसरा फली पकने के समय। इसके अलावा पौधों के भूरे होने पर ही फसल की कटाई की जाती है, क्योंकि कटाई में देरी की वजह से बीज बिखर जाता है जिसके कारण बीज की पैदावार प्रभावित होती है।

चित्र 3: बीज उत्पादन के लिए विंग्ड बीन की खेत की तस्वीर

निष्कर्ष

विंग्ड बीन की उत्पादकता किसी भी फली वाली फसल से ज्यादा होने के साथ साथ, काफी उपयोगी और गुणकारी है क्योंकि इसका प्रत्येक भाग किसी न किसी रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसमें पोषकतत्व एवं खनिज की भरपूर मात्रा होती है जो सेहत के लिए बहुत आवश्यक है, लेकिन हमारे किसानों को इसकी सही जानकारी एवं उपयुक्त किस्मो के आभाव के कारण इसकी ज्यादा लोकप्रियता नहीं है। वहीं मिजोरम में इसकी खेती पर्याप्त मात्रा में किचन गार्डन के रूप में या की झूम भूमि द्वारा छोटे रूप में की जाती है। यद्यपि मिजोरम में इसका बाजार मूल्य अधिक है। अत: विंग्ड बीन की वैज्ञानिक पद्धति से खेती करने में काफी लाभप्रद परिणाम सामने आने की सम्भावना है, जो हमारे किसान बंधुओं के लिए फायदे का रोजगार होने के साथ साथ उनकी आजीविका का मुख्य श्रोत भी साबित हो सकता है।

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी प्रचार द्वारा एकता स्थापित करने वाले व्यक्ति ही सच्चे भारतीय बंधु हैं।

-महर्षि अरविन्द घोष

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी कार्य

राम दयाल शर्मा[1], *राधा रमण देबनाथ*[1], *पिन्टू कुमार*[2]
1. भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय – 793103
2.भाकृअनुप– राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांन्त्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता

वैज्ञानिक एवं तकनीकी कार्यों को हिंदी में करने की अत्यधिक आवश्यकता है ताकि एक आम आदमी भी वैज्ञानिकों तथा प्रौद्योगिकविदों की बात को समझ कर उन पर अमल कर सके। वैज्ञानिक कार्यों में हिंदी का प्रयोग फिलहाल इसलिए कठिन लगता है क्योंकि हम लोगों अंग्रेजी में ही लिखने–पढने के आदी हो गए हैं तथा तकनीकी और वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को सरल भाषा में परिभाषित न कर उसको सिर्फहिंदी में अनुवाद कर देते हैं जिससे वह पढ़ने वाले को बहुत ही कठिन लगता है इसलिए आज यह जरूरत है वैज्ञानिक सामग्री को सरल और ग्राह्य भाषा में लोगों तक पहुंचाया जाए ताकि लोग उन्हें समझ सकें और एक बार यह सिलसिला प्रारंभ होने पर लोग वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को आसानी से समझने लगेंगे। इस कार्य में वैज्ञानिकों विशेषकर हिंदी जानने वाले वैज्ञानिकों तथा तकनीकी क्षेत्र के लोगों के योगदान की आवश्यकता है। भाषा से जुड़े लोग वैज्ञानिक प्रक्रियाओं तथा तकनीकी सामग्री की समझ न रखने के कारण उनको सरल रूप में नहीं कह पाते हैं और इसीलिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन में हिंदी या अन्य भारतीय भाषाओं को जो मान और सम्मान मिलना चाहिए था वह अभी मिलना बाकी है।

प्रौद्योगिकी में उन्नति के साथ साथ आज लगभग सभी कार्यालयों में अधिकतर कार्य कम्प्यूटर की मदद से किया जाता है। अब टाइपराइटर का जमाना नहीं रहा जिससे कार्य करने में अधिक समय लगता था। आज एक ही मसौदे को हम दस बार एडिट करके अपने पास सुरक्षित रख सकते हैं। राजभाषा विभाग इस दिशा में प्रयासरत है तथा अंग्रेजी के ही समान कम्प्यूटर में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए सी–डेक, पुणे तथा अन्य संस्थानों की मदद से नए नए साफ्टवेयर का विकास हो रहा है। जरूरत है हमें इन नई प्रौद्योगिकियों को अपनाने की। अभी तक हिंदी में अनेक फोंट पर कार्य किया जाता था जैसे एपीएस, लीप ऑफिस,कृतिदेव, सुशा, पब्लिक साफ्ट हिंदी पैड, अक्षर, आकृति, टीटी योगेश, श्रीलिपि इत्यादि जिससे एक जगह किये जाने वाले कार्य को दूसरे कम्प्यूटर पर पढ़ने में परेशानी होती थी और हिंदी उस तरह सार्वभौमिक नहीं हो पा रही थी जिस तरह अंग्रेजी में कहीं भी कार्य किया जा सकता है। राजभाषा विभाग ने इस परेशानी को समझते हुए यूनीकोड सिस्टम अपनाने की सलाह दी है ताकि हर जगह एक ही तरह से काम हो और हिंदी में किए गए कार्य को भी कहीं भी और किसी भी कम्प्यूटर में पढ़ा व संशोधित किया जा सके। हिंदी भाषा को राष्ट्रीय/अंतराष्ट्रीय स्तर पर विकसित करने के लिए इसे सूचना प्रौद्योगिकी से जोड़ने की आज सर्वप्रथम आवश्यकता है। इसके लिए हिंदी में काम करने के लिए वर्ड, एक्सेल, पावरप्वाइंट आदि साफ्टवेयर व अन्य उपयोगी सुविधाएं जैसे फोंट, की बोर्ड ड्राइवर (रेमिंगटन, इंस्क्रिप्ट, फोनेटिक) की समस्या का हल सूचना प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा नि:शुल्क अपनी वेब–साइट www.ildc.gov.in के माध्यम से उपलब्ध कराया जा चुका है। अत: कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करने के लिए कोई साफ्टवेयर खरीदने के लिए अतिरिक्त व्यय करने की आवश्यकता नहीं है। राजभाषा विभाग द्वारा स्वयं भी ऑनलाइन हिंदी सीखने, कंप्यूटर की मदद से अंग्रेजी दस्तावेज का हिंदी अनुवाद व कंप्यूटर द्वारा हिंदी डिक्टेशन को हिंदी टेक्स्ट में परिवर्तित करने के साफ्टवेयर विकसित किए गए हैं। आज दूसरे फोंट पर किए गए कार्य को भी टीबीआईएल डाटा कंवर्टर या परिवर्तन साफ्टवेयर से यूनीकोड में परिवर्तित किया जा सकता है। यूनीकोड पर ऐसे लोग भी कार्य कर सकते हैं जिन्हें हिंदी टाइपिंग का ज्ञान नहीं है वे रोमन लिपि में लिखकर हिंदी लिख सकते हैं और अपना कार्य कर सकते हैं। इसके अलावा Google Transliterate पर भी on line रोमन में टाइप कर के हिंदी में लिखा जा सकता है अथवा googlehindiinputsetup को कंप्यूटर पर इंस्टाल करके रोमन में टाइप करके हिंदी में लिखा जा सकता है। इसक साथ ही साथ www.rajbhasha.gov.in एवं Bhashaindia.com पर बहुत सी जानकारियां उपलब्ध हैं जिनका उपयोग किया जा सकता है। भाषा का मन्तव्य तो अपनी बात कहना भर है अगर आप अपनी भाषा में सरल शब्दो में अपनी बात लोगों तक पहुंचा सकें तो यह भाषा के विकास के साथ साथ विज्ञान व तकनीक के विकास के लिए भी फायदेमंद होगा क्योंकि लोग आपकी बात समझ कर उसे अपनायेंगे नहीं तो हिंदी की तरह, तकनीक भी, किताबों में ही धरी की धरी रह जाएगी और इसका फायदा वे किसान नहीं उठा पायंगे जो विदेशी भाषाओं की संकल्पना को नहीं समझ सकते हैं और अपनी भाषा में उन्हें तकनीक नहीं मिल पाती है। आज कृषि में उच्च शिक्षारत विद्यार्थियों के लिए हिंदी में अच्छी पुस्तकों के अभाव की बात की जाती है। हमारे विशेषज्ञों को जो हिंदी में अच्छी पकड़ रखते हैं उन्हें इस दिशा में आगे आना चाहिए।

दुनिया विभिन्न समुदायों, भाषाभाषियों, संस्कृतियों, सभ्यताओं का संगम है जिनकी अपनी– अपनी पहचान है। लेकिन यह भी हकीकत है कि कभी विभिन्न ध्रूवों, क्षेत्रों, महाद्वीपों तथा उपमहाद्वीपों में खिंची सीमाओं में विभाजित विश्व आज हमारे घर के अंदर एक

छोटे से डिब्बे में समा गया है। कहां क्या हो रहा है इसकी सूचना हमें तत्काल मिल जाती है कैसे होता है ये सब। दुनिया के किसी भाग में घटी घटना आपके पास यों ही नहीं पहुंचती न जाने कितनी भाषाओं के बैरियर तोड़कर ये आपको अपनी भाषा में प्राप्त होती है और भाषाओं की इस बाधा को दूर करता है अनुवाद। अनुवाद के माध्यम से हमें विभिन्न राष्ट्रों, वहां के निवासियों की सभ्यता–संस्कृति, उनके कला–कौशल व उनके ज्ञान विज्ञान आदि को जानने, परखने, सीखने और पहचानने में मदद मिलती है। इस तरह अनुवाद ने संपूर्ण विश्व को एक सूत्र में जोड़ने में एक महत्वपूर्ण कड़ी का ही कार्य नहीं किया बल्कि मानव समाज के संपर्क का सूत्रधार का भी कार्य किया है। आज इंटरनेट में संसार के किसी भी भाषा को दूसरी भाषा में अनुवाद किया जा सकता है और अनुदित सामग्री में थोडा–बहुत फेर बदल कर उसे समझने लायक बनाया जा सकता है।

अत: हम कह सकते हैं कि अनुसंधान द्वारा प्राप्त विभिन्न तकनीकों की जानकारी जो कि अंग्रेजी की पत्रिकाओं या शोध जरनल्स में छपती हैं उन्हें हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से किसानों तक पहुंचाया जाना बेहद जरूरी है और इसी से अनुसंधान में भाषा के महत्व को समझा जा सकता है।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी हमारे देश की एकता में सबसे अधिक सहायक सिद्ध होगी, इसमे दो राय नहीं।

–पं. जवाहरलाल नेहरू

कोरोना वायरस

सुजय दास[1] *वैज्ञानिक, राम दयाल शर्मा*[2]
1. भाकृअनुप–राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता –700040
2. भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय

प्रस्तावना :

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने कोरोना वायरस को महामारी घोषित कर दिया है। कोरोना वायरस बहुत सूक्ष्म लेकिन प्रभावी वायरस है। कोरोना वायरस मानव के बाल की तुलना में 900 गुना छोटा है, लेकिन कोरोना का संक्रमण दुनियाभर में तेजी से फैल रहा है।

कोरोना वायरस क्या है ?

कोरोना वायरस (सीओवी) का संबंध वायरस के ऐसे परिवार से है जिसके संक्रमण से जुकाम से लेकर सांस लेने में तकलीफ जैसी समस्या हो सकती है। इस वायरस को पहले कभी नहीं देखा गया है। इस वायरस का संक्रमण दिसंबर (2019) में चीन के वुहान में शुरू हुआ था। डब्लूएचओ के मुताबिक बुखार, खांसी, सांस लेने में तकलीफ इसके लक्षण हैं।

इसके संक्रमण के फलस्वरूप बुखार, जुकाम, सांस लेने में तकलीफ, नाक बहना और गले में खराश जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं। यह वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। इसलिए इसे लेकर बहुत सावधानी बरती जा रही है। यह वायरस दिसंबर (2019) में सबसे पहले चीन में पकड़ में आया था। उसके बाद पूरें विश्व में फैल गया।

कोरोना से मिलते–जुलते वायरस खांसी और छींक से गिरने वाली बूंदों के ज़रिए फैलते हैं। कोरोना वायरस अब चीन में उतनी तीव्र गति से नहीं फैल रहा है जितना दुनिया के अन्य देशों में फैल रहा है। कोरोना के संक्रमण के बढ़ते ख़तरे को देखते हुए सावधानी बरतने की ज़रूरत है ताकि इसे फैलने से रोका जा सके।

क्या हैं इस बीमारी के लक्षण ?

कोवाइड–19 / कोरोना वायरस में पहले बुख़ार होता है। इसके बाद सूखी खांसी होती है और फिर एक हफ़्ते बाद सांस लेने में परेशानी होने लगती है।

इन लक्षणों का हमेशा मतलब यह नहीं है कि आपको कोरोना वायरस का संक्रमण है। कोरोना वायरस के गंभीर मामलों में निमोनिया, सांस लेने में बहुत ज्यादा परेशानी, किडनी फ़ेल होना और यहां तक कि मौत भी हो सकती है। बुजुर्ग या जिन लोगों को पहले से अस्थमा, मधुमेह या हार्ट की बीमारी है उनके मामले में ख़तरा गंभीर हो सकता है। जुकाम और फ्लू में के वायरसों में भी इसी तरह के लक्षण पाए जाते हैं।

कोरोना वायरस का संक्रमण हो जाए तब ?

इस समय कोरोना वायरस का कोई इलाज नहीं है लेकिन इसमें बीमारी के लक्षण कम होने वाली दवाइयां दी जा सकती हैं। जब तक आप ठीक न हो जाएं, तब तक आप दूसरों से अलग रहें।

क्या हैं इससे बचाव के उपाय ?

स्वास्थ्य मंत्रालय ने कोरोना वायरस से बचने के लिए दिशा–निर्देश जारी किए हैं। इनके मुताबिक हाथों को साबुन से धोना चाहिए। अल्कोहल आधारित हैंड रब का इस्तेमाल भी किया जा सकता है। खांसते और छीकते समय नाक और मुंह रूमाल या टिश्यू पेपर से ढंककर रखें। जिन व्यक्तियों में कोल्ड और फ्लू के लक्षण हों, उनसे दूरी बनाकर रखें। अंडे और मांस के सेवन से बचें। जंगली जानवरों के संपर्क में आने से बचें।

मास्क कौन और कैसे पहनें ?

अगर आप स्वस्थ हैं तो भी आपको मास्क पहनने की जरूरत है। अगर आप किसी कोरोना वायरस से संक्रमित व्यक्ति की देखभाल कर रहे हैं, तो आपको मास्क पहनना ही होगा। जिन लोगों को बुखार, कफ या सांस में तकलीफ की शिकायत है, उन्हें मास्क पहनना चाहिए और तुरंत डॉक्टर के पास जाना चाहिए।

मास्क पहनने का तरीका :-

मास्क पर सामने से हाथ नहीं लगाना चाहिए। अगर हाथ लग जाए तो तुरंत हाथ धोना चाहिए। मास्क को ऐसे पहनना चाहिए कि आपकी नाक, मुंह और दाढ़ी का हिस्सा उससे ढंका रहे। मास्क उतारते वक्त भी मास्क की लास्टिक या फीता पकड़कर निकालना चाहिए, मास्क नहीं छूना चाहिए। हर रोज मास्क बदल दिया जाना चाहिए।

कोरोना का संक्रमण फैलने से कैसे रोकें ?

यदि आप संक्रमित हैं तो सार्वजनिक वाहन जैसे बस, ट्रेन, ऑटो या टैक्सी से यात्रा न करें। घर में मेहमान न बुलाएं। घर का सामान किसी और से मंगाएं। सार्वजनिक जगहों पर न जाएं। अगर आप और भी लोगों के साथ रह रहे हैं, तो अलग कमरे में रहें और साझा रसोई व बाथरूम को लगातार साफ़ करें। 14 दिनों तक ऐसा करते रहें ताकि संक्रमण का ख़तरा कम हो सके। अगर आप संक्रमित इलाक़े से आए हैं या किसी संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में रहे हैं तो आपको अकेले रहने की सलाह दी जा सकती है। अत: घर पर रहें।

सफल और शीघ्र सीखी जाने योग्य भाषाओं में हिन्दी सर्वोपरी है।

-लोकमान्य गंगाधर तिलक

वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग से कर रहे हैं ऑफिस मीटिंग्स

सुजय दास, वैज्ञानिक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता –700040

कोरोना वायरस संक्रमण को लेकर देशभर में कई बार लॉकडाउन हो चुका है। ऐसे समय में एक–दूसरे से संपर्क के लिए लोग वीडियो कॉल का प्रयोग कर रहे हैं। वर्क फ्रॉम होम होने से कर्मचारियों की मीटिंग्स के लिए वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग ऐप का उपयोग हो रहा है। केंद्रीय गृह मंत्रालय ने वीडियो कॉलिंग/कॉन्फ्रेंसिंग ऐप zoom के लिए एडवायजरी जारी की है।

कई वीडियो ऐप्स में सुरक्षा को लेकर कई प्रकार की खामियां सामने आई हैं। इसे लेकर स्टेट साइबर सेल जोन इंदौर ने एडवायजरी जारी की है। केन्द्रीय गृह मंत्रालय के द्वारा सेटिंग सुझाव द्वारा ये एडवायजरी जारी की गई है। अगर आप zoom का प्रयोग करते हों तो ये सावधानियां रखें–

वेबसाइट पर अपनाएं ये स्टेप्स : जूम वेबसाइट में लॉगइन करने के बाद पेज में तीन महत्वपूर्ण और उपयोगी लिंक– प्रोफाइल, सेटिंग और पर्सनल मीटिंग, आईडी में दिखाई देते हैं। पर्सनल मीटिंग आईडी के सामने प्रोफाइल एडिट बटन पर क्लिक करें और बॉक्स को अन–चेक कर सेव करें। होम पेज पर सेटिंग पर क्लिक करें और विंडो को नीचे स्क्रॉल करते रहें और केवल आवश्यक कांफिगरेशन करें।

ऐप पर रखें ये सावधानियां : अपने जूम ऐप को अपडेट करें। क्लिक मेनू –>अपडेट चेक करने के लिए नेविगेट क्लिक करें। मीटिंग में एडिट पर क्लिक करें–>पासवर्ड बॉक्स को चेक करें, पासवर्ड डालें, चेक वेटिंग विंडो एनेबल करें।

- पीएमआई का उपयोग करके बैठक आयोजित करने से बचें। स्टार्ट पर क्लिक करने पर, यूजर द्वारा निर्धारित पर्सनल मीटिंग आईडी और पासवर्ड से मीटिंग शुरू होगी।
- पर्सनल मीटिंग आईडी में परेशानी यह है कि पीएमआई और पासवर्ड को फिक्स किया गया है और यह प्रत्येक नई मीटिंग के लिए यह ऑटोमैटिक चेंज नहीं होता है।
- नई मीटिंग शुरू करने के लिए रेंडमली जनरेट आईडी पासवर्ड का प्रयोग करें।

नई मीटिंग शुरू करने में

- नई मीटिंग ड्रॉप डाउन पर क्लिक करें।
- माई पर्सनल मीटिंग आईडी (पीएमआई) को अनचेक करें।
- नई मीटिंग शुरू करने के लिए नए मीटिंग ऑइकन पर क्लिक करें।
- एक बार मीटिंग शुरू होने के बाद, आप नीचे बाईं ओर दिए गए ऑइकन पर क्लिक करके अपनी मीटिंग आईडी और पासवर्ड देखेंगे। यह रेंडम होगा और हर नई मीटिंग के साथ बदल जाएगा। रेंडम आईडी और पासवर्ड से एक मीटिंग का टाइम फिक्स करना।
- शेड्यूल पर क्लिक करें।
- नयी विंडो खुलेगी इसमेंमीटिंग आईडी में generate automatIcally, password, वीडियो, ऑडियो कैलेंडर आदि ऑप्शन को चुनने के बाद।
- उपरोक्त विंडो में एडवांस्ड ऑप्शन पर क्लिक करने के बाद विस्तार खुल जाएगा।
- वेटिंग रूप को ऐक्टिव करें तथा join before host को deactive करें।
- जब सभी सदस्य शामिल हो गए हों तो Meeting session को lock कर दें।
- यदि आपके सभी मेंबर शामिल हो गए हैं. तो control bar में सुरक्षा पर क्लिक करें और लॉक मीटिंग पर क्लिक करें। आप यहां से भी waiting room को इनेबल कर सकते हैं। आप यहां से यूजर्स के लिए स्क्रीन शेयरिंग को डिसेबल भी कर सकते हैं।

इन बातों का रखें ध्यान : मीटिंग होस्ट करने के लिए पर्सनल आईडी (पीएमआई) का उपयोग न करें, इसके बजाय प्रत्येक मीटिंग के लिए रेडम आईडी का उपयोग करें।

- अपने लिंक को सार्वजनिक प्लेटफार्म पर शेयर न करें। इसके बजाय हर नए मीटिंग सत्र / शेड्यूल के लिए रैंडमली जनरेट किए गए मीटिंग आईडी और पासवर्ड शेयर करें।
- यदि आप एडमिन हैं, तो मीटिंग को लिव न करें हमेशा एंड करें। जब अकाउंट का उपयोग न हो तो आवश्यक रूप से साइनआउट करें।

वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग मीटिंग्स : साइबर अटैक से बचने के लिए एडमिन करें ये 9 सेटिंग्स

क्या हैं ये सेटिंग्स :

1. प्रत्येक मीटिंग के लिए नई यूजर आईडी और पासवर्ड सेट करना।
2. वेटिंग रूम को एक्टिव करना, ताकि प्रत्येक यूजर केवल तब ही इंटर हो सके, जब मीटिंग आयोजित करने वाला होस्ट उसकी परमिशन देता हो।
3. होस्ट से पहले मीटिंग में शामिल होने को अक्षम/ डिसेबल करना।
4. केवल होस्ट द्वारा स्क्रीन शेयरिंग की परमिशन देना।
5. 'Allow removed partIcipants to re-join' को डिस्बेल करें।
6. यदि आवश्यक न हो तो फाइल सेंडिंग को डिसेबल करना।
7. लॉकिंग मीटिंग, जब एक बार सभी उपस्थित लोग उसमें शामिल हो जाएं।
8. रिकॉर्डिंग सुविधा को Restricted करना ताकि मीटिंग की बातें रिकॉर्ड न हों।
9. यह आप एडमिन हैं तो मीटिंग को समाप्त करें यानी ऐप को बंद करें।

हिन्दी जब तक शिक्षा का माध्यम नहीं बनती, उसमें मौलिक वैज्ञानिक साहित्य की वृद्धि संभव नहीं।

-निहालकरण सेठी

इंटरनेट के कुछ महत्वपूर्ण और रोचक तथ्य

सुजय दास, वैज्ञानिक

भाकृअनुप–राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता –700040

इंटरनेट अब हर किसी की जिंदगी का अहम हिस्सा बन चुका है। इंटरनेट पर लोगों का जीवन आधारित हो गया है। मानो इंटरनेट के बिना इलैक्ट्रॉनिक और मोबाइल डिवाइसेस ही बेकार है वो इसलिए कि इंटरनेट ने हर किसी को इतनी सुविधा दी है जिसकी वजह से लोग इस पर पूरी तरह निर्भर हो चुके हैं। इंटरनेट के माध्यम से कई लोग अपनी रोजी–रोटी कमा रहे हैं तो आज ऑनलाइन ई–कॉमर्स कंपनियों का भी काफी तेजी से विकास हो रहा है। इंटरनेट के माध्यम से ही लोग सोशल मीडिया के जरिए एक–दूसरे से मिलियन दूरी होने के बाबजूद भी आसानी से संपर्क कर सकते हैं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि इंटरनेट ने हमारी जिंदगी बेहद आसान और सुखदायक बना दी है।

इंटरनेट के कुछ महत्वपूर्ण और रोचक तथ्य

इंटरनेट का इस्तेमाल इतना बढ़ चुका है कि युवा पीढ़ी तो इंटरनेट के बिना अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।इंटरनेट के माध्यम से ई–कॉमर्स वेबसाइट पर शॉपिंग भी आसानी से कर सकते हैं। घर बैठे–बैठे ही आप किसी भी ई–मार्केटिंग वेबसाइट पर जाकर अपनी मनपसंद चीजे खरीद सकते हैं। यही नहीं आप इंटरनेट के माध्यम से फैशन के नए ट्रेंड से भी खुद को अपडेट रख सकते हैं।इंटरनेट के माध्यम से ई–लर्निंग यानि कि शिक्षा के क्षेत्र में स्कूल, कॉलेज से संबंधित कई महत्वपूर्ण जानकारी हासिल कर सकते हैं। इसके अलावा आप ऑनलाइन फॉर्म भर अपने मनपसंद स्कूल, कॉलेज में दाखिला आसानी से ले सकते हैं और तो और आजकल कई ऑनलाइन कोर्सेस भी चलाए जा रहे हैं जो कि पूरी तरह से इंटरनेट पर आधारित हैं।

ऑनलाइन परीक्षाएं भी कंडक्ट करवाई जाती है। फिलहाल आज की तारीख में इंटरनेट पर ई–लर्निंग का क्षेत्र काफी विकसित हो चुका है। इसके अलावा इंटरनेट के माध्यम से हम दुनिया के बेहतरीन अध्यापकों से भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। जिसके लिए आपको किसी अध्यापक के रोजाना वीडियो देखने की आवश्यकता होती है या फिर लाइव लेक्चर लेने के लिए साइट पर रजिस्ट्रेशन की जरूरत पड़ती है। इंटरनेट ने देखते ही देखते महज कुछ सालों में लोगों की जिंदगी में सब कुछ बदल डाला है। इंटरनेट के विशाल प्रभाव को शब्दों द्धारा नहीं समझा जा सकता है। आज इंटरनेट हर किसी की जरूरत बन चुका है। लेकिन हर चीज के फायदे और नुकसान दोनों होते हैं जिसको जानना बेहद आवश्यक है।

हर कोई दशकों से इंटरनेट का इस्तेमाल कर रहा है लेकिन इंटरनेट के बारे में कुछ ऐसे तथ्य भी हो जो निश्चित ही आपके दिमाग के होश उड़ा देगा और आपको इन तथ्यों के बारे में जानकर आश्चर्य भी होगा इसके लिए हम आपको इंटरनेट से जुड़े कुछ ऐसे महत्वपूर्ण और रोचक तथ्यों की जानकारी नीचे दे रहे हैं जो कि इस प्रकार हैं।

साल 1992 में पहली बार 'सर्फिंग द इंटरनेट' शब्द का इस्तेमाल किया गया था।

दुनिया में कई अरबों की आबादी का करीब 45 फीसदी या फिर इससे भी ज्यादा लोग इसका इस्तेमाल करते हैं। आपको बता दें कि इंटरनेट के उपयोग किए जाने वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है।इंटरनेट का इस्तेमाल भारत में भी तेजी से हुआ है। इंटरनेट ने हर किसी के जीवन में एक नई क्रांति ला दी है। आपको बता दें कि भारत की करीब 134 करोड़ जनसंख्या में से करीब 35 फीसदी लोग इंटरनेट का इस्तेमाल करते हैं वहीं आने वाले सालों में इसकी बढ़ोतरी का अनुमान लगाया जा रहा है। आपको बता दें कि भारत में इंटरनेट सेवा 15 अगस्त 1995 से शुरु हुई थी। भारत के सिक्किम राज्य में सबसे पहले इंटरनेट पर इस राज्य की डायरेक्टरी उपलब्ध करवाई थी और आपको ये भी बता दें बीजेपी ऐसी पार्टी है जिसने सबसे पहले इंटरनेट पर अपनी वेबसाइट बनाई।

भारत का गुजरात ऐसा राज्य था जिसने इंटरनेट आने के बाद इंटरनेट पर ऑनलाइन वोटिंग करने की शुरुआत की थी।इंटरनेट पर सबसे पहली वेबसाइट 6 अगस्त 1991 को लॉन्च की गई थी। जबकि 1991 से पहले इंटरनेट पर कोई भी वेबसाइट नहीं थी।इंटरनेट पर हर सेकेंड में करीब 240 मिलियन ई–मेल भेजे जाते हैं।जैसे कि हम सभी जानते हैं मनोरंजन के लिए हम सब यू–ट्यूब पर से अधिक वीडियो देखते हैं लेकिन आपको इस तथ्य को जानकर निश्चत ही हैरानी होगी कि सिर्फ यू–ट्यूब पर ही हर एक सेकेंड में करीब 1,00,000 से अधिक वीडियो देखे जाते हैं और इनकी संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। वीडियो अच्छी तरह से देखा जा सके इसके लिए हाई–स्पीड इंटरनेट की डिमांड बढ़ रही है ताकि वीडियो सर्फिंग में किसी तरह की कोई समस्या नहीं आए और वीडियो बिना रुके चल सके।

इंटरनेट पर गूगल पर हर सेकेंड में करीब 60, 0000 से भी ज्यादा सर्च किए जाते हैं। आपको बता दें कि ये सर्च इंजन साल 1998 को शुरु हुआ था और आज इंटरनेट की दुनिया का सबसे बड़ा सर्च इंजन बन चुका है साथ ही इससे जुड़े लोगों की जिंदगी का हिस्सा भी बन गया है। इंटरनेट का सबसे ज्यादा इस्तेमाल सोशल नेटवर्किंग साइट के लिए भी किया जाता है।

आज की युवा पीढ़ी इंटरनेट में सबसे ज्यादा समय सोशल नेटवर्किंग साइट फेसबुक पर भी बिता रही है। फेसबुक को मार्क जुकरबर्ग ने इजात किया है आज ये दुनिया की सबसे लोकप्रिय सोशल नेटवर्किंग साइट में से एक बन चुकी है। शायद ही आप इंटरनेट के इस तथ्य के बारे में जानते होंगे कि फेसबुक पर हर सेकेंड में करीब 50 हजार से भी ज्यादा लाइक और शेयर किए जाते हैं।

इंटरनेट की दुनिया में तमाम सोशल नेटवर्किंग साइट में ट्वीटर का भी अपना एक अलग महत्व है। फिलहाल इसकी रोचक बात यह है कि ट्वीटर पर हर सेकेंड में करीब 10 हजार ट्वीट किए जाते हैं।इंटरनेट की दुनिया में सोशल नेटवर्किंग साइट की भरमार है उन्हीं में एक है इंस्ट्राग्राम जिस पर बड़े स्तर पर लोग एक्टिव है। आपको बता दें कि हर सेकेंड में इंस्ट्राग्राम पर करीब 2000 फोटो अपलोड किए जाते हैं।

इंटरनेट दुनिया का सबसे बड़ा नेटवर्क है इसका इस्तेमाल हर सेकेंड में कई हजार करोड़ लोग करते हैं, जिसकी वजह से इसमें करीब 27000 GB का ट्रैफिक आता है। इंटरनेट के माध्यम से सिर्फ चिट-चैट ही नहीं बल्कि वीडियो कॉल भी कर सकते हैं। आपको ये जानकर हैरानी होगी कि हर सेकेंड में सोशल नेटवर्किंग साइट स्काइप के जरिए करीब 1900 स्काइप कॉल भी किए जाते हैं।

इंटरनेट के माध्यम से हर सेकंड में करीब 1800 से भी ज्यादा टम्बलर पोस्ट किये जाते है।इंटरनेट के बारे में कई रोचक तथ्यों में ये तथ्य काफी फनी है कि चीन में लोगों को इंटरनेट की लत इस कदर है कि यहां लोगों का इंटरनेट की लत का भी इलाज किया जाता है। वहीं इसे मानसिक बीमारी के तौर पर भी लिया जाता है।

इंटरनेट पर युवा पीढ़ी ज्यादातर अडल्ट साइट पर ज्यादा विजिट करते हैं इन साइटों पर अच्छा खासा ट्रैफिक भी आता है आपको ये जानकर आश्चर्य होगा कि दुनियाभर में इंटरनेट पर मौजूद सभी सूचनाओं और सामग्रियों में 37 फीसदी हिस्सा सिर्फ पॉर्न का है।

इंटरनेट के जहां ढ़ेर सारे फायदे हैं वहीं लोग इसका गलत इस्तेमाल भी करते हैं। हजारों बेवसाइट के हैक होने की खबर के बारे में तो आप आए दिन सुनते रहते हैं लेकिन क्या आप ये जानते हैं कि दुनियाभर में किसी बैसिक HTML कोडिंग या फिर अन्य तरीकों के जरिए हैकर्स प्रतिदिन करीब 30 हजार वेबसाइटें हैक करते हैं।

इंटरनेट से दुनिया में काफी बदलाव तो आया ही है साथ ही काफी हद तक देश का विकास भी हुआ है। शिक्षित लोग इंटरनेट का बखूबी इस्तेमाल कर अपने सारे काम लगभग इसी के जरिए करते हैं। वहीं इंटरनेट के बढ़ रहे इस्तेमाल को देखते हुए दुनिया के सबसे ऊंची चोटी माउंट एवरेस्ट पर भी हाई-स्पीड इंटरनेट सुविधा देने की तैयारी कर रहे हैं।इंटरनेट से जुड़ा एक ऐसा तथ्य भी है जो सुनने में काफी अटपटा लग सकता है। दरअसल ब्रिटेन के 90 लाख व्यस्क लोगों ने करीब इंटरनेट का इस्तेमाल नहीं किया है।आपसे इंटरनेट से जुड़े ट्रैफिक के बारे में बात करें तो इस पर भारी ट्रैफिक इंसानों द्वारा नहीं है, बल्कि इंटरनेट ट्रैफिक का बड़ा हिस्सा गूगल जैसी कंपनियां भी इस्तेमाल करती हैं।

इंटरनेट पर यू-ट्यूब या अन्य साइट के जरिए वीडियो तो ज्यादातर लोग देखते हैं लेकिन क्या आप जानते हैं कि इंटरनेट इस्तेमाल करने वाले करीब 50 फीसदी उपभोक्ता ऐसे भी हैं जो 10 सेकेंड से ज्यादा रुकने की स्थिति में उस वीडियो को बंद कर देते हैं।इंटरनेट से जुड़ा ये भी एक रोचक तथ्य है कि मोंटेनेग्रो जब यूगोस्लाविया से अलग हुआ, तो उसने अपना डोमैन नेम बदल लिया और इसका नेम .यू की जगह .मी रख दिया गया। इंटरनेट से जुड़े इस तथ्य के बारे में भी जानकर हैरानी होगी कि जो देश हर मायने में आगे है यानि कि अमेरिका में इंटरनेट का लोग ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल करते हैं लेकिन फिर भी अमेरिका की 15 फीसदी वयस्क आबादी ने कभी इंटरनेट का इस्तेमाल ही नहीं किया।

आपको ये जानकर भी अटपटा लग सकता है कि हर 10 में से एक अमेरिकी सोचता है कि एचटीएमएल वेब लैंग्वेज नहीं, बल्कि यौन रोग है।इंटरनेट की दुनिया वो दुनिया है कि जिसको अगर एक बार इसमें रहने की लत लग गई उसको छुड़ाना बेहद मुश्किल है। आपको बता दें कि शोधकर्ता यानि कि रिसर्च इंटरनेट की लत को मानसिक बीमारी के तौर पर मान्यता देने की सोच रहे हैं।

इंटरनेट पर दुनिया का पहला वेब कैमरा कैंब्रिज में बनाया गया, जिससे कॉफी पॉट चेक किया गया। आपको बता दें कि इंटरनेट पर सबसे पहला डोमेन symbolocs.com के नाम से रजिस्टर हुआ था। Com साइट पर जाकर आज भी आप रीयल टाइम में रजिस्टर होने वाले डोमेन देख सकते हैं लेकिन यह दुनिया की पहली बेवसाइट नहीं है।

इंटरनेट पर ऑप्टिकल फाइबर केबल की मदद से 255 टेराबाइट प्रति सेकेंड की गति हासिल की जा चुकी है और वैज्ञानिक इससे भी अधिक गति को पाने के लिए वैकल्पिक उपाय सोच रहे हैं। इंटरनेट से जुड़े रोचक तथ्यों में से एक तथ्य ये भी है कि दुनिया के महज

8 फीसदी लोगों के पास ही ब्रॉडबैंड कनेक्शन्स हैं। आज के दौर में ज्यादातर लोग इंटरनेट का इस्तेमाल मोबइल फोन पर करते हैं। या फिर मोबाइल द्वारा अपने पीसी से इंटरनेट कनेक्ट कर इंटरनेट सुविधा का लाभ उठाते हैं।

इंटरनेट पर काम करते वक्त सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण होती है इंटरनेट की स्पीड, अगर इंटरनेट की स्पीड अच्छी होती होती है तो निश्चय ही इंटरनेट यूजर्स इसका इस्तेमाल अच्छे तरीके से कर पाते हैं। भारत में इंटरनेट के बढ़ रहे इस्तेमाल को देखते हुए इसकी पहुंच देश के कोने-कोने के गांवों तक पहुंचाई गई है जिसके चलते लोग अपने संदेश को दूसरे तक आसानी से पहुंचाते हैं। भारत में तेजी से इंटरनेट का इस्तेमाल बढ़ रहा है यही वजह है कि यहां 500 किमी प्रति महीने में इंटरनेट केबल बिछाई जा रही हैं जबकि जरूरत 30 हजार किमी प्रति महीने की है।इंटरनेट आज के युग में सबकी जरूरत बन गया है यही वजह है कि सरकार भी इसको लेकर महत्वपूर्ण कदम उठा रही है।

हिन्दी भाषा के द्वारा हम भारत के अधिकांश स्थानों का मंगल साधन करें। यदि हिन्दी की उन्नति नहीं होती है तो यह देश का दुर्भाग्य है।

-बंकिम चन्द्र चटर्जी

चाय की ऐतिहासिक यात्रा

श्री सुजय दास, वैज्ञानिक[1] एवं श्री आर. डी. शर्मा[2]

[1.] राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता

[2.] भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय

मनुष्य के पेय और खाद्य पदार्थों में जितनी रहस्यपूर्ण, लोकप्रिय और सर्वव्यापी चाय है, उतनी और कोई वस्तु नहीं। विश्व के सभी देशों ने आज चाय को अपना लिया है। सबसे बड़ा सम्मान चाय का जापान में होता है। वहाँ के सामाजिक जीवन में चाय को उच्च पद दिया गया है। जापान में चाय बनाने व पीने और पिलाने का कमरा अलग होता है। उस कमरे को वे 'चा-सेकी' कहते हैं और चाय पीने-पिलाने की विधि अथवा व्यवस्था को वे 'चा-यो-नु' कहते हैं। इसका अर्थ होता है 'चाय का गरम पानी', यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि जैसे हिंदू मूर्तिपूजक हैं, वैसे ही जापानी चाय उपासक।

जापान का प्रथम स्थान

जापानियों के बाद चाय पीनेवालों की संख्या तिब्बतियों में अधिक पाई जाती है। भारत में आने पर कप-प्लेट में उंडेलकर चाय पीना भले ही आज तिब्बती सीख गए हैं, लेकिन इनका पारंपरिक ढंग अलग विशेषता लिए हुए है। तिब्बती दिनभर और खाने के साथ चाय के कई प्याले पीते हैं। चाय में मक्खन व नमक डालते हैं और यह खूब गाढ़ी होती है। उसमें सत्तू घुलता है। भारत में शरण लेने से पूर्व, तिब्बत में अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सब अपना-अपना चाय का प्याला साथ लिए घूमते थे। वह उनके अपने चोगे की उलझन में रखा रहता था। जिस किसी तिब्बती के घर पर, चाहे किसी भी समय अतिथि पहुँचता था, चाय का समाचार आ पहुँचता था। अपनी जेब से अतिथि ने लकड़ी का बना हुआ प्याला निकाला, उसमें चाय डाली गई। चाय पीकर, जीभ से चाट पोंछकर, प्याला फिर अपने निर्दिष्ट स्थान पर रख दिया जाता था।

सन 1950 तक भारत में चाय का प्रचलन था, परंतु इतना नहीं, जितना कि आज है। आज तो बात-बात पर चाय पीने पर, कहावत तक बन गई है कि चाय पीने और झूठ बोलने का कोई समय नहीं होता। सन पचास से पहले तिब्बत के बाद चाय पीने-पिलाने में इंग्लैंड का नंबर था। वहाँ सब बातें बाक़ायदा और किसी न किसी विशेष उद्देश्य से की जाती हैं। इंग्लैंड में चाय निश्चित समय पर पी जाती है। चाय के साथ समयानुकूल रोटी, सैंडविच, टोस्ट, मिठाइयाँ व केक खाए जाते हैं। चाय पीते समय समाज, राजनीति, धर्म, साहित्य और शिल्पकला इत्यादि विविध विषयों के साथ चाय के समय, एक पंथ सौ काज होते हैं। अब तो घरों में और प्राइवेट पार्टियों में चाय के बाद डांस भी होने लगे हैं।

इंग्लैंड में चाय को राजनीतिक और सामाजिक जीवन में एक विशेष स्थान मिल गया है। अमीर और मध्यम श्रेणी के अंग्रेज़ों के यहाँ एक विशेष दिन, साधारणतया इतवार को, चाय के समय नवागंतुक तथा अन्य पड़ोसी, जो उनसे मिलना चाहें बिना बुलाए ही, कौल करने अर्थात उनसे मिलने आते हैं। उस दिन मेजबान, मिलनेवालों के लिए 'एट होम' अर्थात घर पर होते हैं। इस सामाजिक 'कौल-प्रथा' का विशेष रिवाज इंग्लैंड के प्राचीन विश्वविद्यालयों, आक्सफोर्ड और कैंब्रिज में हैं। वहाँ इतवार के दिन यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी बिना बुलाए अपने-अपने विवाहित प्रोफ़ेसर व टयूटरों के घर पर चाय के समय बिना निमंत्रण के ही उन्हें मिलने प्रत्येक टर्न में कम से कम एक बार अवश्य जाते हैं।

दंतकथा और लोकोक्ति तो यह है कि चाय का आविष्कार पहले पहल चीन में हुआ। वहाँ के एक सम्राट ने, जिसका नाम 'शेन-नुंग' था, ईसा से 2737 वर्ष पहले चाय को चीन में खाद्य-पदार्थों में स्थान प्रदान किया। परंतु वास्तव में असली बात तो यह है कि सन 543 ईसवी में 'बोधी धर्म' नामक एक भारतीय परिव्राजक, बौद्ध धर्म प्रचारक, चीन में गया। उसने प्रण किया था कि वह नौ वर्ष रात-दिन, बिना सोए, निरंतर चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करेगा। वह नींद रोकने के लिए चाय पिया करता था। वह भारतवर्ष से अपने साथ चाय की पत्ती ले गया था। चीनवालों ने बौद्ध भिक्षु को ध्यान में बैठने से पहले चाय की पत्तियाँ उबालकर पीते देखा तो बौद्ध धर्म के साथ-साथ चाय को भी अपना लिया। उन्होंने चाय को धर्म का एक अंग अथवा क्रिया मान लिया। इस तरह चाय चीन में पहुँची और वहाँ उसका प्रादुर्भाव हुआ। फिर वहाँ से क्रमशः जापान के द्वारा पाश्चात्य देशों में पहुँची।

चाय का प्रचार-धर्म प्रचारक द्वारा

यह बात बिलकुल सही मालूम होती है कि छठी सदी में चीन में चाय का प्रचार एक बौद्ध धर्म-प्रचारक, भारतीय बौद्ध-धर्मावलंबी, के द्वारा हुआ। चीन में इस ऐतिहासिक घटना के आधार पर एक दंतकथा प्रचलित है -`धर्म नाम का एक राजकुमार भारत से चीन में गया। वह रात-दिन ध्यान में लीन रहता था। एक दिन उसको योग-साधना के दौरान नींद आ गई। उसने गुस्से में आकर अपनी पलकों को काटकर फेंक दिया। उनसे एक पौधा उत्पन्न हुआ। राजकुमार धर्म ने उसकी पत्तियों को इकठ्ठा कर सुखाया, उन्हें उबालकर उनका अर्क पी लिया। उससे उसे नींद न आई। वह बौद्ध धर्म के ध्यान में लीन हो गया। तब से चीन में चाय का प्रचलन हो गया।

चाय का पौधा उन्नीसवीं सदी तक भारतवर्ष के जंगलों में अपने आप पैदा होता था। सन 1820 ई. में आसाम के सबसे पहले अंग्रेज़ शासक, कमिश्नर डेविड स्कट साहब, को कूचविहार और रंगपुर प्रांतों में चाय के पौधे मिले। आसाम के निवासी उनकी पत्तियों को सुखाने के बाद उबालकर पीते थे। भारतवर्ष के गवर्नर विलियम बेंटिक ने आसाम की भूमि को चाय की खेती के लिए उपयुक्त मानकर वहाँ ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से चाय के बाग लगवाए। तब से आसाम में चाय की खेती विधिपूर्वक होने लगी और यहीं से चाय के व्यापार का श्रीगणेश हुआ।

चाय का जन्म-स्थान भारत

अत: चाय की जन्मभूमि नि:संदेह भारत ही है। यहाँ से चाय पहले पहल चीन में पहुँ ची। वहाँ से जापान और जापान से इंग्लैंड। जापान से पहले पहल चाय को इंग्लैंड लानेवाला व्यक्ति 'विखम' है। उसने 27 जून, सन 1615 के अपने एक पत्र में लिखा है कि उसने सर्वप्रथम चाय जापान से मँगाई थी।

अब तक की ऐतिहासिक खोज से यही पता लगता है कि चाय का प्रयोग इंग्लैंड में सत्रहवीं शताब्दी में आरंभ हुआ। उससे पहले विलायत में चाय की शक्ल भी किसी ने न देखी थी। जब वहाँ चाय का प्रचार होने लगा तो प्रारंभ में चाय जावा से इंग्लैंड आने लगी। किंतु जब जावा द्वीप से डच लोगों ने अंग्रेजों को बेदखल कर दिया और भारत पर तिजारत के द्वारा उनका बोलबाला होने लगा, तब अंग्रेज़ सौदागर चाय को भारत से इंग्लैंड लाने लगे। तब भारत में चाय चीन से आती थी, क्योंकि भारतवर्ष चाय का जन्मस्थान होने पर भी यहाँ के निवासी चाय की खेती नहीं करते थे। हाँ , आसाम के निवासी जंगली चाय की पत्ती उबालकर उसे पीते थे। शुरू में भारतवर्ष से 250 मन चाय प्रतिवर्ष विलायत जाती थी। उस समय इंग्लैंड में चाय की कीमत 144 रुपए प्रति सेर से 240 रुपए प्रति सेर तक थी और 17वीं सदी के अंत तक ही उसका भाव गिरकर 12 रुपए सेर हो गया था।

धीरे-धीरे चाय की तारीफ़ व विज्ञापन छपने लगे। एक कवि, वालर (1606-1687) ने चाय की तारीफ़ में एक कविता लिखी। उसमें उसने चाय को वनस्पतियों की महारानी का खिताब दिया। चाय का प्रचार करने और प्रयोग बढ़ाने के लिए अथवा उसे लोकप्रिय बनाने के लिए चाय के सौदागर और होटलवाले मनोरंजक तथा चित्ताकर्षक विज्ञापन अख़बारों में छापने लगे। सितंबर 1657 की पत्रिका 'मरक्यूरियस पालिटिक्स' में यह विज्ञापन छपा था -'वह अपूर्व वस्तु', चीनी अर्क, चायना ड्रिंक, जिसको चीनी चा कहते हैं और अन्य प्रदेशों के लोग 'टे' या' 'टी' कहते हैं और जिसकी प्रशंसा वैद्य जन मुक्तकंठ से करते हैं, वह लंदन रायल एक्सचेंज के समीप सुल्तानेस हेड नाम के कॉफी-घर की इमारत में बिकती है। सबसे पहले एक अंग्रेज व्यापारी ने सन 1660 में चाय की तारीफ़ में छपवाया - 'चाय के बहुमूल्य पदार्थ होने का सबूत यह है कि वह केवल बड़ी बीमारियों के इलाज में ही काम में नहीं आती, वरन उसका प्रयोग बड़े-बड़े भोजों में भी होता है। वह शहज़ादों व अमीरों को भेंट स्वरूप दी जाती है।'

कहा जाता है कि इंग्लैंड की महारानी कैथरीन ने पहले-पहल चाय को राजप्रासाद में आश्रय दिया था। उस समय चाय इतनी दुष्प्राप्य वस्तु मानी जाती थी कि उसके असाधारण वस्तु होने की वजह से इंग्लैंड के विख्यात साहित्यिक 'पेपी' (1632-1703) ने अपनी 25 सितंबर 1666 की दिनचर्या में बड़े गौरव के साथ लिखा कि उस दिन उसने एक प्याला चाय को पहले-पहल मंगवाकर पिया।

चाय को तलकर खाना

जब पहले-पहल चाय इंग्लैंड में आई, उस समय चाय पीने का तरीका आज के तरीके से भिन्न था। आरंभ में कोई तो चाय की पत्तियों को उबालकर, रंगीन पानी को (जिसे हम आज पीते हैं) फेंक देते थे और पत्तियों को कभी तो तलकर, कभी मक्खन से मिलाकर, रोटी के टुकड़े अथवा टोस्ट पर जैम या नमक मिलाकर खाते थे। तत्कालीन विख्यात कवि 'सौदे' (1774-1843) ने लिखा है कि सबसे पहले चाय का पौंड जो विलायत में आया था उसे पीने के लिए जो अधिवेशन, 'टी पार्टी' हुई थी, उस समय चाय के सम्मेलन में उनके एक परम मित्र का दादा उपस्थित था। सौदे ने उस बूढ़े सज्जन के मुँ ह से स्वयं सुना था कि चाय की पत्ती एक बड़ी भारी केतली में उबाली गई थी। उसका अर्क जो वास्तव में पीने की चीज़ थी, वह तो फेंक दिया गया था। उबली हुई पत्तियाँ , नमक व मक्खन के साथ, सब उपस्थित मेहमानों ने खाई।

अंग्रेजों ने भारत से व्यापार के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी बनाई। इस कंपनी का ध्येय आरंभ में केवल रुपया पैदा करना था। कंपनी ने असम व हिमालय के अन्य प्रांतों में चाय के बाग लगवाए, और अपनी ही तैयार की हुई चाय विलायत भेजने लगे। ईस्ट इंडिया कंपनी के अपने असम के बाग की तैयार चाय का पहला पौंड सन 1836 में इंग्लैंड भेजा गया और 19वीं सदी के अंत तक चाय का प्रचार व इस्तेमाल इंग्लैंड में इतना बढ़ गया था कि औसतन प्रत्येक व्यक्ति दो पौंड सालाना चाय की पत्ती उबालकर पीने लग गया था। अब तो इंग्लैंड में औसतन प्रति आदमी दस पौंड चाय वर्ष भर में पीता है। जापान, तिब्बत और कश्मीर के बाद सबसे अधिक चाय के पीनेवाले इंग्लैंड में हैं। चाय के द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी की आमदनी खूब बढ़ी। इंग्लैंड का व्यापार बढ़ा। किंतु चाय के ही कारण इंग्लैंड को अमरीका से भी हाथ धोना पड़ा। वरना आज युनाइटेड स्टेट्स भी ऑस्ट्रिया, कनाडा की तरह इंग्लैंड के अधीन होता, जो कि सन 1776 तक था भी।

चाय पर कर

यह उस समय की बात है जब इंग्लैंड की पार्लियामेंट अमरीका के लिए कानून बनाती और उस पर शासन करती थी। लार्ड नार्थ प्रधानमंत्री के नेतृत्व में पार्लियामेंट ने अमरीका जाने व पहुँचनेवाली चाय पर कर लगाया। अमरीकनों को यह बात पसंद न आई। उन्होंने विलायत से आनेवाली चाय का बहिष्कार कर दिया। चाय के लदे हुए जहाज़ों को अमरीका के बंदरगाहों से चाय समेत लंदन को लौटा दिया। कुछ जहाज़ों की चाय न उतारने दी। कुछ जहाज़ों की चाय समुद्र में उड़ेल दी गई। यह सब काम 'बोस्टन टी पार्टी' के द्वारा होता था। ज़बरदस्त आंदोलन हुआ।

अमरीका व इंग्लैंड के मध्य लड़ाई छिड़ गई। वाशिंग्टन के नेतृत्व में 12 जुलाई 1776 को अमरीका के निवासियों ने अपने देश की स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और अंग्रेज़ों से लड़कर उनको परास्त कर स्वतंत्र हो गए। ऐसी है महत्वपूर्ण चाय, जिसने अमरीका को इंग्लैंड से मुक्त कराकर स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कराया।

वंदेमातरम की रचना

श्री सुजय दास, वैज्ञानिक[1] एवं श्री आर. डी. शर्मा[2]

[1.] राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता

[2.] भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय

वंदे मातरम की रचना कब, कैसे और क्यों ?

बंगाल में बंगला के लेखक, कवि और उपन्यासकार तो बहुत से हुए हैं, पर बंकिम बाबू की अपनी एक शैली थी और उन्होंने 'वंदे मातरम' गीत लिखकर अपने को अमर कर दिया। मुझे याद आते हैं वे दिन जब एक तरफ यह गीत लोगों में स्वतंत्रता-संग्राम के लिए जोश पैदा करता था वहीं दूसरी ओर देश की परतंत्रता पर उन्हें दुखी करता था।

सन 1938 में हरीपुर (वारदोली तालुका) में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था, वैसा कोई और नहीं हुआ। सारा प्रबंध सरदार पटेल का था। लाखों की भीड़ थी पर शांति इतनी कि यदि एक कलम हाथ से गिर जाती तो उसकी आवाज कानों में आ पड़ती, गरज यह कि ऐसा आदेश- पालन किसी कांग्रेस में देखने को नहीं मिला। सभी डेलिगेट चुप शांत भाव से गाँधीजी और उनके साथ सुभाष बाबू के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा गाँधीजी लाठी लिये हुए और सुभाष बाबू गाँधी टोपी पहने हुए आकर मंच पर खड़े हो गये। लोगों ने तालियाँ पीटीं और विद्यापीठ की कुछ लड़कियों ने 'वंदे मातरम' गाना आरंभ किया। देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत लाखों की भीड़ रो पड़ी - ऐसा आकर्षण था उस गीत में।

नैहाटी का भक्तिमय वातावरण

बंकिम बाबू का जन्म कलकत्ते से कुछ मील की दूरी पर स्थित नैहाटी नामक नगर में सन 1836 में हुआ था। वे एक संपन्न जमींदार परिवार में जन्मे थे। उनका पुश्तैनी मकान किसी राजमहल से कम न था। उनके पिता श्री यादव चंद्र चटर्जी एक बड़े जाने-माने व्यक्ति थे, साहित्यिक एवं राधा-कृष्ण के परम भक्त भी। उन्होंने अपने पुराने घर से प्राय: डेढ़ किलोमीटर दूर जाकर देवल पाड़ा महल्ले में एक विशाल दो मंजिले भवन का निर्माण किया, जिसके मध्य में श्री राधा-कृष्ण का मंदिर बनवाया। जहाँ पूजा-अर्चना तो एक पंडित करता था पर राधाजी की सुंदर अष्टधातु की बनी हुई प्रतिमा की सेवा के लिए एक अलग परिचारिका रखी गयी थी, जो राधाजी की सेवा अर्थात श्रृंगार, पूजा आदि करती। उन्हें प्रतिदिन नयी पीले रंग की साड़ी पहनायी जाती, तभी मंदिर का पट खुलता और सैकड़ों दर्शनार्थी, जो खड़े होकर पट खुलने की प्रतीक्षा करते रहते थे, साष्टांग प्रणाम करते और पुजारी से प्रसाद लेते। मकान के विशाल हाते में रथ-शोभा यात्रा भी सावन के महीने में निकला करती थी (वैसे ही - जैसे श्री जगन्नाथ पुरी में) रथ पर कृष्ण-बलराम के विग्रह होते। इस अवसर पर हाते में एक छोटा-मोटा मेला भी लगता, जिसमें हर चीज की छोटी-छोटी दुकानें होतीं तथा संगीत का आयोजन भी होता।

बंकिम बाबू का एक कमरा मंदिर के पास ही था, जिसमें बैठकर उन्होंने अपने अनेक उपन्यासों के अधिकांश हिस्से लिखे थे। इनके ये उपन्यास बंगला साहित्य की निधि है : 1. दुर्गेश नंदिनी 2. कपाल-कुंडला 3.मृणालिनी 4.विष-वृक्ष 5. इंदिरा 6. कृष्णकांतेर वील 7. चंद्रशेखर 8. आनंद मठ 9. देवी चौधरानी तथा 10. सीताराम इत्यादि।

इन उपन्यासों में बंकिम बाबू का सबसे पहला उपन्यास 'दुर्गेश नंदिनी' है, जिसमें एक वीर क्षत्राणी की कथा है। ये सारे उपन्यास उन्होंने अपने लिखने के कमरे और अर्जुना झील के तट पर बैठकर लिखे थे। अर्जुना झील करीब छह किलोमीटर में फैली हुई है और चारों ओर तरह-तरह के घने वृक्ष तथा धान के खेत इसके सौंदर्य पर चार चांद लगाते हैं। बंकिम बाबू के 'वंदे मातरम' में बंगाल का जो रूप चित्रित है, वह हू-ब-हू इस झील में मानो अंकित हो। इसे देखते ही स्मरण हो जाता है --

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम

शस्य श्यामलाम् मातरम् वंदे मातरम्

बंकिम बाबू के उपन्यासों में 'आनंद मठ' सबसे विख्यात और सर्वोपरि है। 'आनंद मठ' का नाम और विषय दोनों ही त्रिकोण पर आधारित है। इस कथा का मूल बंगाल का महा दुर्भिक्ष है, जो सर जॉन शोर की रिपोर्ट के मुताबिक सन 1769-1770 में हुआ था। वह एक ऐसा वक्त था, जब सोने से ज्यादा मूल्यवान अन्न था। सोना देने पर भी अन्न प्राप्त होनेवाला न था। माँ की गोद में बच्चे दूध के लिए तड़प-तड़पकर मर जाते थे और उनके सामने ही लाश को चील, सियार, कौआ नोच-नोचकर खाते थे। एक तरफ प्रकृति का तांडव-नृत्य, दूसरी

तरफ नवाबों का शासन, जहां प्रशासक थे मुर्शिदाबाद के नवाब मीरजाफर। मगर लगान की वसूली शाह आलम से दीवानी प्राप्त कर कंपनी ने अपने हाथों में ली थी। दोनों शासकों के बीच रिआया की स्थिति काफी दयनीय हो गयी। कोई सहायता तो थी नहीं, यदि कुछ था तो सिर्फ शासन का जुल्म। इस जुल्म के विरोध में प्रतिशोध की भावना से उठोरित अपने मठाधीशों के आदेश से संन्यासियों ने विद्रोह किया।

पलासी की लड़ाई के बाद कंपनी बंगाल और उड़ीसा की दीवानी (बादशाह शाह आलम से उसने दीवानी हासिल की थी) हासिल कर अपनी सत्ता स्थापित करने में लगी हुई थी। परिणाम यह हुआ कि अर्थ की व्यवस्था तो कंपनी के हाथों में थी और शासन नवाब के हाथों में।

बिहारी का एक दोहा है --

'दुसह दुराज प्रजानिको, क्यों न बढ़े दु:ख द्वंद अधिक अंधेरों जग करत, मिली मावस रविचंद।।' अर्थात, जब दुअमली होती है -- प्रजा पर दुहरे शासकों का शासन होता है -- तो प्रजा के दु:ख बेतरह बढ़ जाते हैं, जैसे अमावस की रात सूर्य और चंद्र के एक साथ मिल जाने से सर्वाधिक गहरी काली हो जाती है।

यही हाल बंगाल का हो रहा था। एक ओर कंपनी की सरकार वित्त के मामलों में अपना अधिकार मजबूत करने में लगी हुई थी, जिसके लिए उसने दीवानी हासिल की थी। दूसरी ओर नवाबों के शासन से देश की जनता कुचल रही थी। यही कारण था संन्यासियों को हिंदुओं के रक्षार्थ विद्रोह करना पड़ा। उनका दल गाँव-गाँव जा-जाकर हिंदुओं को प्रोत्साहित करने के लिए यह गीत गाता हुआ विचरा करता था -

वंदे मातरम, वंदे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्।
शस्य श्यामलाम् मातरम्। वंदे मातरम्।
शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्।
सुहासिनी समधुर भाषिणी।
सुखदां वरदां मातरम्।
वंदे मातरम्।
त्रिशंत्कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले,
द्वित्रिशत्कोटि भुजेधृति स्वर कर वाले।
के बेले मा तुमी अबले,
बहुबल धारणीम् नमामि तारणीम्।
रिपुदल वारणीम् मातरम्। वंदे मातरम्।।

'आनंदमठ' की लोकप्रियता

इस तरह से बंकिम बाबू ने त्रिकोणात्मक कथा को 'आनंद मठ' में बड़ी कुशलता से उस समय की स्थिति का सजीव चित्रण करते हुए दिखलाया है। कहना न होगा कि यह पुस्तक बंगाल में अतिशय लोकप्रिय हुई और घर-घर में 'वंदे मातरम' गीत गाया जाने लगा। हिंदुओं के लिए इस गीत ने संजीवनी-बूटी-सा काम किया। प्रस्तुत है इस लोकप्रियता का एक प्रमाण। सन 1901 में जब गुरूदेव रवींद्रनाथ टैगोर अपनी पुत्री माधवीलता के विवाह के संबंध में मुजफ्फरपुर में पधारे तो यहां के बंगाली समाज ने उन्हें प्रथम मान-पत्र (नोबेल पुरस्कार प्राप्ति के कई साल पहले) प्रदान किया था। सभा में खासी भीड़ हुई और लोगों ने बड़े चाव से गुरूदेव के भाषण को सुना और अंत में उनसे अनुरोध किया कि वे अपने मुख से एक गीत गाकर सुनाएं। इस अनुरोध पर उन्होंने जो गीत गाया, वह 'वंदे मातरम' ही था।

अंग्रेजी का प्रसार-प्रचार

पलासी की लड़ाई के बाद बंगाल में अंगरेजों की सत्ता धीरे-धीरे मजबूत होने लगी, उन्हीं दिनों राजा राम मोहन राय के अथक प्रयास से ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ईस्ट इंडिया कंपनी को यह आदेश दिया कि वह भारतवर्ष में अंग्रेजी शिक्षा का आरंभ करे और इस आदेशानुसार लार्ड बेंटिक ने कई संस्थाएं खुलवायीं। इनमें सबसे प्रथम था कलकत्ता का प्रेसिडेंसी कॉलेज जो सन 1820 में स्थापित हुआ। अंगरेजी शिक्षा के तहत प्रेसिडेंसी कॉलेज भारत का ही नहीं बल्कि एशिया का सबसे पहला कॉलेज था। प्रेसिडेंसी कॉलेज की स्थापना के बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय की सृष्टि हुई, जिसका विस्तार बंगाल से लेकर पंजाब तक था और इस देश के दक्षिण हिस्से को छोड़कर बाकी सभी हिस्सों में जो कॉलेज स्थापित हुए, उन सबकी परीक्षाएँ कलकत्ता विश्वविद्यालय ही लिया करता था।

किस्से कलाम न होगा यहाँ यह कहना कि नैहाटी नगर गंगा के किनारे पड़ता है। गंगा के उस पार चेनसुरा नगर है (वर्तमान नाम चिंसुरा)। किसी समय यह फ्रांस के अधिकार में था। क्लाइव और फ्रांसिसी जनरल डुप्ले के बीच लड़ाई चली थी और अंत में दोनों के बीच इस शर्त पर सुलह हुई कि बंगाल में चंदरनगर (वर्तमान नाम चन्दन नगर) और चेनसुरा तथा मद्रास में पांडिचेरी फ्रांस के अधिकारगत होंगे। तदनुसार ये फ्रांस के अधिकार में आये और यहां फ्रेंच की पढ़ाई शुरू हुई।

चेनसुरा में-

चेनसुरा में बंकिम बाबू के पिता के मित्र बंगाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार भूदेव मुखोपाध्याय रहा करते थे। इन दोनों के बीच बड़ी मैत्री थी। आना-जाना बना रहता था। इसको आसान करने के लिए बंकिम बाबू के पिता ने गंगा और अर्जुना झील के बीच (दूरी बहुत कम थी)। एक नहर बनवायी और एक नौका अर्जुना में रखी, जिस पर चढ़कर वे चेनसुरा जाते और अर्जुना में यदाकदा सैर किया करते थे। गंगा से लगे रहने के कारण अर्जुना झील का पानी कम नहीं होता। बंकिम बाबू के बाद कोई पुत्र नहीं था और उनकी माली हालत भी खराब हो चली तो उनके पिता का बनवाया हुआ विशाल महल धीरे-धीरे खंडहर हो चला। उनके तीन नाती थे, उनके पास उतना पैसा नहीं कि मरम्मत करा सकें। परिणाम यह हुआ कि बंकिम बाबू के देहावसान के बाद ये महल खंडहर का रूप धारण करने लगे। उनके नाती कलकत्ता चले गये।

खंडहर निवास - अब संग्रहालय-

बंगाल सरकार ने मकान के कुछ हिस्से जो अभी भी अच्छी अवस्था में हैं तथा बंकिम बाबू के लिखने-पढ़ने का कमरा तथा शिव और राधा वल्लभ के मंदिर अपने हाथ में कर लिये हैं और इसे एक संग्रहालय का रूप दे डाला है। दर्शक इन्हें जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से परमिट लेकर ही देखने जा सकते हैं। वर्तमान समय में नैहाटी और शहरों की तरह एक उन्नत शहर बन गया है और वहां का 'टेनिस बॉल साईज' का मशहूर रसगुल्ला आज भी बनता है। यहां का प्रसिद्ध महल्ला भाटपाड़ा आज भी संस्कृत विद्या का केंद्र बना हुआ है। भाटपाड़ा, जो शहर से प्राय: आधा किलोमीटर की दूरी पर है, के ब्राह्मणों के परिवार आज भी परंपरागत जीवन-शैली अपनाये हुए हैं। पर बंकिम बाबू के कारण जो गरिमा उसे प्राप्त थी, वह अब कहानी बनकर रह गयी है।

हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में समासीन हो सकती है।

-मैथिली शरण गुप्त

भाषा और देश

श्री सुजय दास, वैज्ञानिक[1], श्री आर. डी. शर्मा[2], पिन्टू कुमार[1]

[1.] राष्ट्रीय प्राकृतिक रेशा अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, कोलकाता

[2.] भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम

जिस दिन लार्ड मैकाले का सपना पूरा और गांधी जी का सपना ध्वस्त हो जाएगा, उस दिन देश पूरे तौर पर केवल 'इंडिया' रह जाएगा। हो सकता है, समय ज्यादा लग जाए, लेकिन अगर भारतवर्ष को एक स्वाधीन राष्ट्र बनना है, तो इन दो सपनों के बीच कभी न कभी टक्कर होना निश्चित है।

जो देश भाषा में गुलाम हो, वह किसी बात में स्वाधीन नहीं होता और उसका चरित्र औपनिवेशिक बन जाता है। यह एक पारदर्शी कसौटी है कि चाहे वे किसी भी समुदाय के लोग हों, जिन्हें हिंदी को राष्ट्रभाषा मानने में आपत्ति है, वह भारतवर्ष को फिर से विभाजन के कगार तक ज़रूर पहुँचाएँगे।

लार्ड मैकाले का मानना था कि जब तक संस्कृति और भाषा के स्तर पर गुलाम नहीं बनाया जाएगा, भारतवर्ष को हमेशा के लिए या पूरी तरह, गुलाम बनाना संभव नहीं होगा। लार्ड मैकाले की सोच थी कि हिंदुस्तानियों को अँग्रेज़ी भाषा के माध्यम से ही सही और व्यापक अर्थों में गुलाम बनाया जा सकता है।

अंग्रेज़ी जानने वालों को नौकरी में प्रोत्साहन देने की लार्ड मैकाले की पहल के परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी परस्त नेता एकजुट हो गए कि अंग्रेज़ी को शासन की भाषा से हटाना नहीं है अन्यथा वर्चस्व जाता रहेगा और देश को अंग्रेज़ी की ही शैली में शासित करने की योजनाएँ भी सफल नहीं हो पाएँगी।

यह ऐसे अंग्रेज़ीपरस्त नेताओं का ही काला कारनामा था कि अंग्रेज़ी को जितना बढ़ावा परतंत्रता के 200 वर्षों में मिल पाया था, उससे कई गुना अधिक महत्व तथाकथित स्वाधीनता के केवल 50 वर्षों में मिल गया और आज भी निरंतर जारी है।

जबकि गांधी जी का सपना था कि अगर भारतवर्ष भाषा में एक नहीं हो सका, तो ब्रिटिश शासन के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम को आगे नहीं बढ़ाया जा सकेगा। भारत की प्रादेशिक भाषाओं के प्रति गांधी जी का रुख उदासीनता का नहीं था। वह स्वयं गुजराती भाषी थे, किसी अंग्रेज़ीपरस्त नेता से अंग्रेज़ी भाषा के ज्ञान में उन्नीस नहीं थे, लेकिन अंग्रेज़ों के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम छेड़ने के बाद अपने अनुभवों से यह ज्ञान प्राप्त किया कि अगर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम को पूरे देश में एक साथ आगे बढ़ाया जा सकता है, तो केवल हिंदी भाषा में, क्यों कि हिंदी कई शताब्दियों से भारत की संपर्क भाषा चली आ रही थी।

भाषा के सवाल को लेकर लार्ड मैकाले भी स्वप्नदर्शी थे, लेकिन उद्देश्य था, अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से गुलाम बनाना। गांधी जी स्वप्नदृष्टा थे स्वाधीनता के और इसीलिए उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया। स्वाधीनता संग्राम में सारे देश के नागरिकों को एक साथ आंदोलित कर दिखाने का काम गांधी जी ने भाषा के माध्यम से ही पूरा किया और अहिंसा के सिद्धांत से ब्रिटिश शासन के पाँव उखाड़ दिए।

पूरे विश्व में एक भी ऐसा राष्ट्र नहीं है, जहाँ विदेशी भाषा को शासन की भाषा बताया गया हो, सिवाय भारतवर्ष के। हज़ारों वर्षों की सांस्कृतिक भाषिक परंपरावाला भारतवर्ष आज भी भाषा में गुलाम है और आगे इससे भी बड़े पैमाने पर गुलाम बनना है। यह कोई सामान्य परिदृष्टि नहीं है। अंग्रेज़ी का सबसे अधिक वर्चस्व देश के हिंदी भाषी प्रदेशों में है।

भाषा में गुलामी के कारण पूरे देश में कोई राष्ट्रीय तेजस्विता नहीं है और देश के सारे चिंतक और विचारक विदेशी भाषा में शासन के प्रति मौन है। यह कितनी बड़ी विडंबना है कि भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा के सवालों को जैसे एक गहरे कोहरे में ढँक दिया गया है और हिंदी के लगभग सारे मूर्धन्य विद्वान और विचारक सन्नाटा बढ़ाने में लगे हुए हैं। राष्ट्रभाषा के सवाल पर राष्ट्रव्यापी बहस के कपाट जैसे सदा-सदा के लिए बंद कर दिए हैं। कहीं से भी कोई आशा की किरण फूटती दिखाई नहीं पड़ती।

सारी प्रादेशिक भाषाएँ भी अपने-अपने क्षेत्रों में बहुत तेज़ी से पिछड़ती जा रही हैं। अंग्रेज़ी के लिए शासन की भाषा के मामले में अंतर्विरोध भी तभी पूरी तरह उजागर होंगे, जब यह प्रादेशिक भाषाओं की संस्कृतियों के लिए भी ख़तरनाक सिद्ध होंगी। प्रादेशिक भाषाओं

की भी वास्तविक शत्रु अंग्रेज़ी ही है, लेकिन देश के अंग्रेज़ीपरस्तों ने कुछ ऐसा वातावरण निर्मित करने में सफलता प्राप्त कर ली है जैसे भारतवर्ष की समस्त प्रादेशिक भाषाओं को केवल और केवल हिंदी से ख़तरा हो।

सुप्रसिद्ध विचारक हॉवेल का कहना है कि किसी भी देश और समाज के चरित्र को समझाने की कसौटी केवल एक है और वह यह कि उस देश और समाज की भाषा से सरोकार क्या है। जबकि भारतवर्ष में भाषा या भाषाओं के सवालों को निहायत फालतू करार दिया जा चुका है। लगता है भारत वर्ष की सारी राजनीतिक पार्टियाँ इस बात पर एकमत हैं कि हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं दिया जाए और देश में शासन की मुख्य भाषा केवल और केवल अंग्रेज़ी को ही रहना चाहिए।

भाषा के मामले में भारतवर्ष को छोड़कर किसी भी स्वाधीन राष्ट्र का रुख ऐसा नहीं है। अगर इंग्लैंड का कोई प्रधानमंत्री अपने देशवासियों को हिंदी में संबोधित करे, तो स्थिति क्या बनेगी ? भारतवर्ष भी एक स्वाधीन राष्ट्र तभी बन पाएगा जब अंग्रेज़ीपरस्त राजनेताओं से मुक्ति मिलेगी। इससे पहले विदेशी भाषा से मुक्ति पाना संभव नहीं है।

राष्ट्रवाद का उभार और प्रेमचंद की भाषा- दृष्टि

लोकनाथ तिवारी, उप प्रबंधक (राजभाषा)

चलार्थ पत्र मुद्रणालय, नासिक, भारत प्रतिभूति मुद्रण एवं मुद्रा निर्माण निगम लिमिटेड की इकाई

प्रेमचंद अपने विचार - प्रवाह और रचनात्मक संदर्भों में भारतीय संस्कृति के पहरुआ हैं। कुछ रचनाकार ऐसे होते हैं जिनको बार - बार पढ़ना - सुनना - समझना बहुत जरुरी हो जाता है। खासकर आज के संदर्भ में तो और भी अधिक जहाँ शासक वर्ग धर्म, भाषा तथा संस्कृति के स्तर पर अनावश्यक तर्कों के द्वारा विभिन्न प्रभेदों की सृष्टि करके सांस्कृतिक एवं जातीय चेतना को बिखेर देना चाहता है । इस बाबत प्रेमचंद को पढ़ना अपनी जातीय चेतना की समझ को बेहतर बनाना होगा जिससे विभिन्न तरह के भ्रमों से परे हमारी प्रज्ञा स्थिर होकर तथ्यों का सत्यापन कर सके ।

इस आलेख में हम स्वाधीनता आंदोलन के राष्ट्रीय नवोन्मेष के संदर्भ में प्रेमचंद की भाषा संबंधित सोच पर विचार करेंगे ।

प्रेमचंद ने लिखा है - 'संभव है, इस वक्त आपको राष्ट्र भाषा की जरुरत न मालूम होती है और अंग्रेजी से आपका काम मजे से चल रहा हो, लेकिन अगर आगे चल कर हमें फिर हिंदुस्तान को घरेलु लड़ाइयों से बचाना है, तो हमें उन सारे नातों को मजबूत बनाना पड़ेगा जो राष्ट्र के अंग हैं और जिनमें कौमी भाषा का स्थान सबसे ऊँचा नहीं तो किसी से कम भी नहीं है।' 1

औपनिवेशिक समय समाज में भाषा और संस्कृति के मसले को इस ढ़ंग से पेश किया गया कि 'राष्ट्रवादी' विचारतंत्र के उभार को काहिल बना दिया गया। प्रबुद्ध भारतीय- चिंतन परंपरा ने इस षडयंत्र को भांपते हुए 'भारतीय नवजागरण' के मार्फत 'राष्ट्रवाद' की समझ को विकसित करते हुए भी इसे सफल नहीं होने दिया । इस संदर्भ में प्रेमचंद उसी भारतीय नवजागरण की एक कड़ी माने जा सकते हैं परंतु उन्होंने लीक से अलग हटकर जातीय चेतना के उन मूल्यों को अपनी लेखनी का आधार बनाया जिससे एक अखंड भारतीय राष्ट्र की भावना का विकास हो सके। वे इस भावना के विकास में भाषा के योगदान को सबसे महत्वपूर्ण मानते थे - 'मनुष्य में मेल - मिलाप के जितने साधन हैं उनमें सबसे मजबूत, असर डालने वाला रिश्ता भाषा का है । राजनीतिक, व्यापारिक या धार्मिक नाते जल्द या देर से कमजोर पड़ सकते हैं और अकसर टूट जाते हैं, लेकिन भाषा का रिश्ता समय की और दूसरी बिखरने वाली शक्तियों की परवाह नहीं करता और एक तरह से अमर हो जाता है।' 2

प्रेमचंद राष्ट्र तथा उसकी अवधारणा में राष्ट्र भाषा को विशेष महत्व देते थे। उनका मानना था कि - 'राष्ट्रीयता के उपादानों में जाति, धर्म, और राजनैतिक तथा भौगोलिक परिस्थिति, संस्कृति और भाषा- इन पाँच ही अंगों का होना आवश्यक है, लेकिन हमारे विचार में एक भाषा का होना मुख्य है। राष्ट्र भाषा के बिना राष्ट्र का बोध हो ही नहीं सकता। जहाँ राष्ट्र है, वहाँ राष्ट्र भाषा का होना लाजिमी है ।' 3

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि आखिर क्यों प्रेमचंद एक 'राष्ट्र' के लिए एक राष्ट्रीय भाषा को विशेष महत्व देते हैं जबकि भाषा महज विचार- विनिमय का माध्यम भर मानी गई है। विचार - विनिमय तो किसी भी भाषा में हो सकता है फिर उसके लिए राष्ट्र भाषा की ही जरुरत क्यों ?

दरअसल राष्ट्रवादी चिंतन के उभार में भाषा की अहम भूमिका होती है । दूसरी बात जिस समय प्रेमचंद लिख रहे थे वह दौर राष्ट्रवादी चिंतन के उभार का दौर था और प्रेमचंद स्वयं उसके उभार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे ।

प्रेमचंद देख रहे थे कि उपनिवेशवादी शोषण के अंतर्गत 'फूट डालो और शासन करो' की नीति के मार्फत धर्म, भाषा, जाति इत्यादि जैसे संवेदनशील मसलों को उकेर कर भारतीयों को आपस में लड़ाने- भिड़ाने की कुटनीतिक चाल जारी थी । हिंदी - उर्दू भाषा को धर्म की भाषा बनाना तथा इस विचार को अमली जामा पहनाकर कुटनीतिक साम्राज्यवादी शासन को बढ़ावा देना इसी नीति का अंग था ।

प्रेमचंद इस षडयंत्र से वाकिफ थे। इसलिए उन्होंने भारतीय राष्ट्रवादी चिंतन के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र भाषा का पक्ष लिया जोकि हिन्दुस्तानी भाषा थी। हिन्दुस्तानी भाषा में हिंदी-उर्दू के प्रचलित शब्दों का प्रयोग होता था ।

वर्तमान समय में विकसित देशों द्वारा फिर से विकासशील एवं अविकसित देशों पर साम्राज्यवादी आक्रमण किया जा रहा है । इसके तहत उपभोग की संस्कृति का विकास करके पहले तो बाजार को मजबूत किया जाता है फिर धीरे - धीरे सांस्कृतिक उपादानों को विकृत करने की कोशिश की जाती है ताकि विकृति के पश्चात मूल ढ़ाँचे को आसानी से तोड़ा जा सके। इसके लिए समरुपता का नियम अपनाया जाता है । समरुपता के नियम के अनुसार विश्व की सभी विरासतों को एक जैसा बना कर उनकी मौलिकता एवं सांस्कृतिक विभिन्नता को नष्ट किया जाता है ।

अंग्रेजी को विश्व भाषा बनाकर अन्य देशी एवं विदेशी भाषाओं का गला घोटा जा रहा है। हम जानते हैं कि भाषा संस्कृति की संवाहक होती है। एक भाषा में एक राष्ट्र, उसकी संस्कृति और अस्मिता जीवित रहती है। अगर संस्कृति नष्ट हो जाए तो व्यक्ति अपने सांस्कृतिक धरोहर को आसानी से भूल जायेगा और तब आसानी से उसे अपना अनुगामी या सांस्कृतिक गुलाम बनाया जा सकता है।

इस पूरी प्रक्रिया में साम्राज्यवादी संस्कृति के वर्चस्व की स्थापना स्वत: होते चली जाती है । अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने भारत में उपरोक्त कार्य के द्वारा भारतीय संस्कृति में अपनी जड़े गहरी जमा ली थी।

प्रेमचंद ने कथित प्रक्रिया की नब्ज समझ ली थी इसलिए वे लगातार पत्र - पत्रिकाओं में अंग्रेजी भाषा, संस्कृति तथा तथाकथित अंग्रेजी सभ्यता की पुरजोर आलोचना करते थे। इसी दूरदृष्टि के कारण प्रेमचंद आज के दौर में और भी प्रासंगिक हो उठे हैं।

प्रेमचंद को यह पता था कि अंग्रेजी उपनिवेशवाद भारतीयों में हीन भावना का प्रसार करता है तथा भारतीयों में 'सांस्कृतिक हीनता ग्रंथि' के माध्यम से भारतीय भाषाओं के बरक्स अंग्रेजी भाषा को लाद रहा है । दूसरी बात, अंग्रेजी भाषा के प्रभुत्व से भारतीय मानस मानसिक गुलाम बनता जा रहा है । इस तथ्य को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं - ' हमारी पराधीनता का सबसे अपमानजनक,सबसे व्यापक, सबसे कठोर अंग अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व है। कहीं भी वह इतने नंगे रुप में नहीं नजर आती। सभ्य समाज के हर एक विभाग में अंग्रेजी मानो हमारी छाती पर मूँग दल रही है।' 4

प्रेमचंद इस बात को बखूबी समझ रहे थे कि 'अंग्रेजी शिक्षा हम शिष्टता के लिए नहीं ग्रहण करते। इसका उद्देश्य उदर है।' 5

प्रेमचंद शुद्धतावादी नहीं थे और ना ही उन्हें दुनिया की किसी भी भाषा को सीखने से परहेज था, बल्कि उन्हें भारतीय भाषाओं की उपेक्षा कर अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व पर आपत्ति थी क्योंकि उनकी नजर में अंग्रेजी आतंक की भाषा थी । वे लिखते हैं - 'अंग्रेजी राजनीति का, व्यापार का, साम्राज्यवाद का, हमारे ऊपर जैसा आतंक है, उससे कही ज्यादा अंग्रेजी भाषा का है।' 6

प्रेमचंद भारतीय नवजागरण की एक प्रबुद्ध कड़ी हैं। भारतीय नवजागरण की चिंतन परंपरा काफी सुदृढ़ है । इस परंपरा में ऐसे भी मनीषी हैं जो स्वयं अंग्रेजी भाषा के प्रकांड विद्वान थे पर वे प्रेमचंद की तरह ही अंग्रेजी भाषा का विरोध कर रहे थे।

प्रश्न है आखिर ऐसा करने के पीछे उनकी क्या मंशा रही होगी। जिस अंग्रेजी को आज भी सिर आँखों पर बैठाकर रखा जाता है और जिसे ज्ञान की थाती माना जाता है, उसके विरोध में वे लोग थे जो अंग्रेजी भाषा के सिद्धहस्थ थे। इस क्रम में डॉ. रामविलास शर्मा, अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र, राहुल सांकृत्यायन तथा और भी नाम लिए जा सकते हैं ।

इसका जवाब डॉ. रामविलास शर्मा देते हैं। वे बताते हैं कि भारतीय नवजागरण के चिंतकों ने 'अंग्रेजी साहित्य में अभिव्यक्त स्वाधीनता और जनतंत्र के विचारों से प्रेरणा पायी और अपनी भाषा की सेवा करने में लग गये। उन्होंने अंग्रेजी की उच्चता के सामने माथा टेक कर उसे अपनी सांस्कृतिक भाषा स्वीकार नहीं कर लिया। अंग्रेजी के माध्यम से हम तक दो तरह की संस्कृतियाँ पहुँची । एक संस्कृति शेक्सपियर, मिल्टन, शेली, बायरन, डारविन और शॉ की थी जो ब्रिटिश दासता के विरुद्ध और मानवीय मूल्यों के लिए हमें लड़ना सिखाती थी । इस संस्कृति से हमने यह भी सीखा कि जैसे अंग्रेजी साहित्यकारों और मनीषियों ने लैटिन और फ्रांसीसी को अंग्रेजी से समृद्ध भाषा मानते हुए भी उन्हें अपने ऊपर हावी होने नहीं दिया वरन अंग्रेजी के उत्कर्ष के लिए बराबर प्रयत्न करते रहे, वैसे ही हमें भी अंग्रेजी की गुलामी न करके अपनी भाषा की उन्नति के लिए लगातार प्रयत्न करना चाहिए। इसके विपरीत, अंग्रेजी के माध्यम से हम तक साम्राज्यवादी संस्कृति भी आयी है। यह संस्कृति गौरांग जातियों की श्रेष्ठता और काली जातियों की हीनता घोषित करती है । इस नस्ल सिद्धांत के अनुरुप वह नेटिवों के रहन -सहन, रीति-रिवाज, भाषा, साहित्य सबसे घृणा करना सिखाती है । वह समाज - सुधार का मतलब भारतीय संस्कृति के आंतरिक मूल तत्वों का विकास नहीं मानती; समाज सुधार का मतलब है -अंग्रेजी की नकल। इस संस्कृति के जाने -माने प्रतिनिधि थे लार्ड मैकाले, कर्जन, किपलिंग जैसे लोग। ' 7

इस पूरे उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचंद का राष्ट्रभाषा, भारतीय भाषा का समर्थन और अंग्रेजी भाषा के विरोध के पीछे कैसी मानसिकता काम कर रही थी।

प्रेमचंद का विरोध एक भाषा के रुप में अंग्रेजी को सीखने को लेकर बिलकुल नहीं था। पर सभ्यता और संस्कृति के लिए इसे ही एक मात्र जरिया बताना वे बेमानी मानते थे। इस मुद्दे पर प्रेमचंद और डॉ. रामविलास शर्मा एकमत है।

'अंग्रेजी सीखना और बात है: उसे सीख कर लाभ उठाया जा सकता है: उसके साथ और उसके अलावा योरप की अन्य भाषाएँ सीख कर और भी लाभ उठाया जा सकता है । लेकिन उसे सभी भारतीय भाषाओं के ऊपर केंद्रिय और सांस्कृतिक भाषा बनाने से ऐसे वर्ग का ही सृजन होगा जो जनता से दूर होगा, जो अपने अंग्रेजी ज्ञान के बल पर - न कि ईमानदारी, देशभक्ति, कार्य क्षमता के बल पर - शासन कार्य चलायेगा। इससे देश को अपार क्षति होगी।'8

आज ब्यूरोक्रेसी में व्याप्त अंग्रेजी प्रेम के कारण सरकार का जनता से कटना इसकी पुष्टि करता है और प्रेमचंद अपने विचारों के कारण कितने प्रमाणिक और प्रासंगिक लगने लगते हैं ।

भारत बहुभाषी राष्ट्र है और इसमें ं के संदर्भ में संविधान की आठवीं अनुसूची की प्रासंगिकता इत्यादि ।

डॉ. रामविलास शर्मा भारत में व्याप्त भाषागत समस्याओं के प्रसंग में प्रेमचंद के विचारों को जनवादी विचारों से संपृक्त मानते हैं। वे लिखते हैं 'प्रेमचंद भाषा की समस्या के बारे में राष्ट्रीय और जनवादी जंग से सोचते थें। उनके सामने सारे प्रदेश का मानचित्र था जहाँ हर प्रदेश में वे हिंदुओं और मुसलमानों को प्रादेशिक भाषा का का व्यवहार करते देखते थे। इस आधार पर उन्हें यह दृढ़ विश्वास हुआ था कि जो बात दूसरे प्रदेशों में हुई है वह हिंदी प्रदेशों में भी होगी । वे गाँवों में हिंदुओं और मुसलमानों की व्यापक भाषागत और सांस्कृतिक एकता देखते थे । इसलिए धर्म के आधार पर भाषा के विभाजन की बात वह सोच ही न सकते थे।' 9

प्रेमचंद का विचार इस संदर्भ में उल्लेखनीय है - 'हिंदुस्तान के हर एक सूबे में मुसलमानों ने अपने- अपने सूबे की भाषा अपना ली है। बंगाल का मुसलमान बंगला बोलता है और लिखता है, गुजरात का मुसलमान गुजराती, मैसुर का कन्नड, मद्रास का तमिल और पंजाब का पंजाबी आदि । यहां तक कि उसने अपने - अपने सूबे की लिपि भी ग्रहण कर ली है। उर्दू लिपि और भाषा से यद्दिप उसका धार्मिक और सांस्कृतिक अनुराग हो सकता है, लेकिन नित्य - प्रति के जीवन में उसे उर्दू की बिलकुल आवश्यकता नहीं प ?ती । यदि दूसरे -दूसरे सूबों के मुसलमान अपने -अपने सूबे की भाषा नि:संकोच भाव से सीख सकते हैं और उसे यहाँ तक अपना सकते हैं कि हिंदुओं और मुसलमानों की भाषा में नाममात्र का भी कोई भेद नहीं रह जाता तो फिर संयुक्त प्रांत और पंजाब के मुसलमान क्यों हिंदी से इतनी घृणा करते हैं ।' 10

दरअसल यह भाषाई कट्टरता उपनिवेशवादी जहर के कारण फैलाई गई थी। धर्म को भाषा से जोडना फूट डालो और शासन करों की नीति का ही विस्तार था । उपनिवेशवादी ताकते इसमें कुछ हद तक सफल भी रही।

प्रेमचंद इस धारणा का खंडन करते हैं कि हिंदी के राष्ट्रभाषा बनते ही भारत की अन्य भारतीय भाषाएँ खतरे में पड जाएगी। वस्तुत: वे प्रांतीय भाषाओं के विकास को महत्व देते हुए एक राष्ट्रीय भाषा के विकास पर बल देते हैं। उनका कहना है, 'हम सूबे की भाषाओं के विरोधी नहीं हैं। आप उनमें जितनी उन्नति कर सकें, करें; लेकिन एक कौमी भाषा का मरकजी सहारा लिए बगैर आपके राष्ट्र की जड़ कभी मजबूत नहीं हो सकती।' 11

प्रेमचंद क्षेत्रीयतावाद, जो राष्ट्रवाद का गला घोटने के लिए पर्याप्त होती है, की संकीर्ण मानसिकता से भली- भाँति परिचित थे। विखंडनवादी शक्तियों को बखूबी पता था कि भारतीय राष्ट्रवाद के स्वरुप को क्षेत्रीय - प्रांतीय विभेदों को उभार कर आसानी से खंडित किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए इन शक्तियों ने सबसे पहले अत्यधिक संवेदनशील तत्वों भाषा और धर्म का इस्तेमाल किया।

प्रेमचंद इस मसले पर कहते हैं, 'हम एक ऐसा राष्ट्र बनाने का स्वप्न देख रहे हैं जिसकी बुनियाद पर हमारी कौमियत की मीनार खड़ी की जा रही है और अगर हमने कौमियत की सबसे बड़ी शर्त, यानी कौमी जबान की तरफ से लापरवाही की तो इसका अर्थ यह होगा कि आपकी कौम को जिंदा रखने के लिए अंग्रेजी की मरकजी का कायम रहना लाजिम होगा। वरना कोई मिलाने वाली ताकत न होने के कारण हम सब बिखर जायेंगे और प्रांतीयता जोर पकड कर राष्ट्र का गला घोंट देगी और जिस बिखरी हुई दशा में हम अंग्रेजों के आने के पहले थे, उसी में फिर लौट जायेंगे ।'12

क्षेत्रीयतावाद को उभारने में अब तक मामला हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग तथा अधिकार को लेकर ही उठाया गया था, परंतु अब इसे और सूक्ष्म तथा खतरनाक तरीके से हिंदी तथा उसकी बोलियों को लेकर संविधान की आठवींअनुसूची में शामिल करने की मांग से जोड़ दिया गया है ताकि क्षेत्रीयतावाद राष्ट्र के एकीकृत हिस्से को खंड - खंड कर सके । प्रेमचंद के समय में भी इसी तरह के षडयंत्रों को साम्राज्यवादी शक्तियाँ अंजाम देना चाहती थी।

प्रेमचंद के कथन से उपरोक्त बात की पुष्टि होती है -' हमें यह देखकर आश्चर्य भी हुआ और खेद भी कि कहीं - कहीं प्रांतों की उपभाषाओं में जान डालने का प्रयत्न किया जा रहा है। अवधी, ब्रजभाषा, बुंदेलखंडी और भोजपुरी यही प्राय: हिंदी में समझी जाती हैं और इन चारों के पास अपना-अपना साहित्य मौजूद है। अवधी और ब्रज भाषाओं का तो क्या कहना। हिंदी साहित्य में जो कुछ है वह इन्हीं दोनों उपभाषाओं में है। तो क्या यह मंशा है कि बोलियों को साहित्य का रुप दे दिया जाए ? बोलियों में जो कुछ साहित्य है, वह ग्राम्य गीतों में स्वरचित हैं और ग्राम्य गीत एकत्र करने से अगर उन बोलियों की रक्षा हो सकती है तो हम इस आंदोलन के साथ है। लेकिन यह ख्याल फैलाना कि भोजपुरी, तिर्हुति और प्रांत की एक सौ एक बोलियों में साहित्य की रचना की जाए और उसके पत्र निकलें, शक्ति के अपव्यय के सिवा कुछ नहीं है। पंद्रह करोड आदमी जिस भाषा को बोलते, समझते और लिखते हैं, वह तो अभी साहित्य नहीं बना सकी, उप भाषाएं वह चमत्कार कैसे कर दिखाएंगी, जिनके बोलने और समझने वाले लाखों ही तक रह जाते हैं।'13

इस लंबे उद्धरण के बाद हिंदी भाषा और उसकी बोलियों के संबंध में जो विवाद खड़ा किया गया उस पर अलग से कुछ बोलने को नहीं रह जाता क्योंकि प्रेमचंद ने इसकी ओट लेकर चलने वाले षडयंत्र की पोल खोल दी है।

कुल मिलाकर प्रेमचंद भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारुप में राष्ट्र भाषा को विशेष महत्व देते हैं। अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व को स्वीकारना तथा प्रांतीय भाषाओं को राष्ट्रीय महत्व देना - उनकी नजर में दोनों ही खतरनाक है। वे प्रांतीय भाषाओं को प्रांतीय स्तर पर फलने - फुलने की सलाह अवश्य देते हैं पर राष्ट्रीय स्तर पर वे 'हिंदुस्तानी' भाषा का ही समर्थन करते हैं।

प्रेमचंद हिंदी भाषा पर उसकी बोलियों को तरजीह देने के मुद्दे को संकीर्ण क्षेत्रीयतावाद के उभार के रुप में देखते हैं जो राष्ट्रवाद के विकास में सबसे बड़ी बाधा है। साम्राज्यवादी शक्तियों के विखंडनवादी प्रपंचों को भाँपते हुए उनके व्यूह से निकलने का रास्ता उन्हें एक अखंड राष्ट्र में ही दिखाई देता है जिसकी जड़ राष्ट्र भाषा में निहित है।

इस बाबत प्रेमचंद का स्पष्ट बयान है – 'अगर हम एक राष्ट्र बनकर अपने स्वराज का उपयोग करना चाहते हैं तो हमें राष्ट्र भाषा का आश्रय लेना होगा और उसी राष्ट्र भाषा के बख्तर से हम अपने राष्ट्र की रक्षा कर सकेंगे ।'14

संदर्भ सूची

1) 1, 2, 4, 5, 6, 11, 12, 14 प्रेमचंद : कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण - 2006, पृ.सं. क्रमशः 150, 136, 115, 127, 119, 137, 137, 138

2) 3, जमानाः 26 दिसंबर, 1932 , प्रेमचंद

3) 7, 8, 9, 10, डॉ. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1977, पृ.सं. क्रमशः 392, 395, 318, 317,

4) 13, जमानाः 23 अप्रैल, 1934, प्रेमचंद

संसार की और कोई भी भाषा ऐसी नहीं है जो सरलता और बोलचाल की दृष्टि से हिन्दी की बराबरी कर सके।

–फादर कामिल बुल्के

राजभाषा हिंदी की विकास यात्रा

डॉ॰ के. डी. साह[1], श्री आर. डी. शर्मा[2], श्री गौरांग घोष[2]

[1.] भाकृअनुप–राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र, कोलकाता

[2.] भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय

हिंदी भाषा दुनिया की सबसे प्राचीन भाषा है। दुनिया में सर्वप्रथम संस्कृत भाषा का निर्माण हुआ, उसके बहुत जल्द देवनागरी लिपि का अस्तित्व आया जिसे आज हम हिंदी के नाम से जानते हैं । संस्कृत भाषा को सरल करने के लिए हिंदी भाषा का जन्म हुआ। भारतवर्ष में हिंदी भाषा के बाद सभी क्षेत्रीय भाषाएं जैसे तमिल, तेलुगू ,कन्नड़ ,गुजराती अस्तित्व में आई। संपूर्ण दुनिया पहले सिर्फ भारत थी जो आज सहस्त्र देशों में बंट चुकी है। आज के आधुनिक संसार में ऐसा कोई देश नहीं जहां हिंदी न बोली जाती हो क्योंकि हर जगह का अस्तित्व भारत से जुड़ा है और हिंदी भारत की धरोहर है।

हिंदी शब्द का जन्म संस्कृत भाषा के सिंधु शब्द से हुआ है। सिंधु एक नदी का नाम है जो भारत के प्रमुख और प्राचीन नदियों में से एक है। बाहरी महाद्वीप के लोग इस नदी को सिंधु के बजाय हिंदू बोलते थे क्योंकि उनके भाषा में 'स' को 'ह' उच्चारण किया जाता था और इसी आधार पर यहां के बसे लोगों को हिंदू पुकारते थे। तब से भारत के लोगों को हिंदू पुकारा जाने लगा और आगे चल कर पूरा देश हिंदुस्तान के नाम से जाना जाने लगा। इसी हिंदू से हिंदी शब्द आया और हिंदी भाषा का नामकरण हुआ। हिंदी शब्द किसी भी शास्त्र, वेद, पुराण, उपनिषद में नहीं है। यह नाम हमें बाहरी महाद्वीप के लोगों के उच्चारण के कारण मिला हुआ है। आज के हिंदू वास्तव में सनातन तथा आर्य हैं और सभी नए धर्म के लोग भी पहले सनातन ही थे।

समय के भूचाल में हमारा देश गुलामी के शिकंजे में जकड़ गया। हमारी भाषा, हमारी संस्कृति, हमारी धरोहर का विकास अवरुद्ध कर दिया गया । उनका जुल्म इतना गहरा था कि हम अपने आप को परिवर्तन करने पर मजबूर थे। विश्व गुरु भारत, जुल्म का दास बन गया। पराधीनता की बेड़ियों में भी आजादी की चिंगारी, दिल में समाहित थी। जब यह चिंगारी, ज्वाला बनी हमारा देश आजाद हुआ और भारत अपनी भाषा अपनी संस्कृति और सभ्यता के पदस्थापन में जुड़ गया। फलस्वरूप 14 सितंबर 1949 को हमारे देश में हिंदी को राजभाषा का स्थान प्राप्त हुआ, लेकिन राजभाषा के रूप में हिंदी के प्रति जागरूकता तथा उसके उत्तरोत्तर प्रयोग में गति लाने के उद्देश्य से केंद्रीय कार्यालयों में 14 सितंबर को हिंदी दिवस अथवा उस तारीख से हिंदी सप्ताह, हिंदी पखवाड़ा, हिंदी मास का आयोजन किया जाता है । यह दिन हमें हिंदी के विकास की प्रेरणा देता है अत: यह दिन महत्वपूर्ण है। हिंदी दिवस वास्तव में एक राजभाषा पर्व है । हमारे देश में राष्ट्रीय पर्व मनाए जाते हैं जैसे स्वाधीनता दिवस, गणतंत्र दिवस इत्यादि उन्हीं में से एक राजभाषा पर्व भी है। राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान की तरह राजभाषा भी राष्ट्र का गौरव होता है। संसार के सभी स्वाधीन देश अपना आंतरिक कामकाज अपने देश की भाषा में करते हैं। भारत में भी सरकारी कामकाज राजभाषा हिंदी में हो ये अपेक्षित है।

राजकाज चलाने के लिए किसी न किसी भाषा की आवश्यकता पड़ती है। सामान्य शासन प्रशासन, न्याय–प्रक्रिया, संसद–विधानमंडल एवं सरकारी कार्यालयों में प्रयोग हेतु संविधान द्वारा स्वीकृत भाषा एवं लिपि तथा भारतीय अंको का रूप ही राजभाषा है। अपने समय में संस्कृत, पालि, महाराष्ट्री, प्राकृत अथवा अपभ्रंश राजभाषा रही है। प्रमाणों से विदित होता है कि 11वीं से 15वीं शताब्दी ई. के दौरान राजस्थान में हिन्दी मिश्रित संस्कृत का प्रयोग होता था। 12वीं ई. में महाराज पृथ्वीराज चौहान और तत्कालीन चित्तौड़ नरेश रावत समर सिंह अपने पत्र व्यवहार एवं राजकाज में हिन्दी का प्रयोग हिन्दी के मारवाड़ी रूप के साथ–साथ खड़ी बोली के रूप में करते थे। अलाउद्दीन खिलजी ने राजकाज में हिन्दी को समुचित स्थान दिया। उसने राजकीय नियमों और उपनियमों की हिन्दी में प्रकाशित लाखों प्रतियां अपने शासन के दक्षिणी प्रदेशों में भी भिजवाई। मोहम्मद तुगलक और बहमनी वंश के शासकों ने दक्षिणी राज्यों में हिन्दी के माध्यम से राजकाज चलाया। मुसलमान बादशाहों के शासन–काल में मुहम्मद गोरी से लेकर अकबर के समय तक हिन्दी शासन कार्य का माध्यम थी। मुगल बादशाहों ने तात्कालीन मित्र रियासतों में अपने वकीलों के कार्यालय स्थापित किए थे। तद्नुरूप ही मित्र राजाओं ने मुगल शहंशाहों की राजधानी में अपने–अपने वकीलों के कार्यालय स्थापित किए थे। यह उल्लेखनीय है कि इन वकीलों के कार्यालयों का कामकाज हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि में होता था। मुगल शहंशाहों के प्रशासन में हिन्दी में लिखे गए पत्र अमलदस्तूर, खतूत अहलकारन, बही तालीक, तहरीर, इत्तलानामा, रसीद सनदी, फरमान आदि हिन्दी की ब्रज, अवधी, मारवाड़ी, ढूंढाड़ी और खड़ी बोली में लिखे जाते थे। मराठों के शासनकाल में भी अनेक ताम्रपत्र हिन्दी में लिखे गए और उन्होनें राजाओं के साथ हिन्दी में पत्र व्यवहार किया। अकबर के गृहमंत्री राजा टोडरमल के आदेश से सरकारी कागजात फारसी में लिखे जाने लगे। एक फारसीदान मुंशी वर्ग ने तीन सौ वर्ष तक फारसी को शासन–कार्य

का माध्यम बनाए रखा। बाद में मैकाले ने आकर अंग्रेजी को प्रतिष्ठित किया या दूसरे शब्दों में कहें तो थोपा।

वास्तव में अंग्रेज हिन्दुस्तान में व्यापार करने आए थे। व्यापार करते करते उन्होने भारत के नब्ज को टटोला और उन्हें ऐसा लगा कि यहाँ की सत्ता पर काबिज हुआ जा सकता है। इस रहस्य का उद्घाटन लार्ड मैकाले द्वारा अंग्रेजी को स्थापित करने से पहले 2 फरवरी, 1835 में ब्रिटिश संसद में दिए गए भाषण से पता चलता है। उस भाषण का छोटा सा अंश उद्धृत है- 'मैंने भारत की ओर-छोर यात्रा की है, पर मैंने एक आदमी नहीं देखा जो भीख मांगता हो या चोर हो, मैंने इस मुल्क में अपार सम्पदा देखी है। उच्च उदात्त नैतिक मुल्यों को देखा है। इस योग्यता और मुल्यों वाले भारतीयों को कभी कोई जीत नहीं सकता, यह मैं मानता हूँ। तब तक जब तक हम इस देश की रीड़ ही न तोड़ दें और भारत की यह रीड़ है उसकी आध्यात्मिक और संस्कृतिक विरासत। इसलिए मैं यह प्रस्ताव करता हूँ कि भारत की पुरानी शिक्षा को हम बदल दें। उसकी संस्कृति को बदलें वे यह सोचें कि जो भी विदेशी है, बेहतर है ताकि वे सोचने लगे कि अंग्रेजी भारतीय भाषाओं से महान है। इससे वे अपना आत्मसम्मान खो बैठेंगे। अपनी देशज जातीय संस्कृति भूलने लगेंगे और तब वे वह होंगे जो हम चाहते हैं। सचमुच एक अक्रांत और पराजित राष्ट्र'। मैकाले के बाद से उच्च स्तर पर अंग्रेजी और निम्न स्तर पर देशी भाषाएँ प्रयुक्त होती रही। हिन्दी प्रदेश में उर्दू प्रतिष्ठित रही, यद्यपि राजस्थान और मध्यप्रदेश के देसी राज्यों में हिन्दी माध्यम से सारा कामकाज होता रहा।

राष्ट्रीय चेतना के विकास के साथ स्वभाषा को राजपद दिलाने की मांग उठी। भारतेन्दु हरिशचन्द्र, महर्षि दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महामाना मदन मोहन मालवीय, महात्मा गांधी, राजर्षि पुरूषोत्तम दास टंडन, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस और बहुत से अन्य नेताओं और जनसाधारण ने अनुभव किया कि हमारे देश का राजकाज हमारी भाषा में होना चाहिए और वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है। स्वतंत्रता सेनानी, महात्मा गांधी के प्रिय साथी और संविधान सभा के सदस्य डॉ. मोटुरि सत्यनारायण ने केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में आयोजित एक परिचर्चा में कहा था- 'हिन्दी आन्दोलन हिन्दी भाषा का आन्दोलन नहीं, हिन्दी भाषा -भाषियों, उत्तर भारतीय तथा अहिन्दी भाषा-भाषियों का आन्दोलन नहीं, बल्कि यह हिन्दुस्तान के सांस्कृतिक पुनरूत्थान का आन्दोलन है'। यह जनभाषा हिन्दी ही थी, जिसके माध्यम से आन्दोलन करने पर हम स्वतंत्रता के नजदीक पहुँच सके। महात्मा गांधी जी तो कहा करते थे कि अखिल भारतीय नेतृत्व के लिए हिन्दी भाषा का ज्ञान और व्यवहार आवश्यक है। हिन्दी सभी आर्य भाषाओं की सहोदरी है, यह भारत के सबसे बड़ी क्षेत्र के लोगों की मातृभाषा है, हिन्दी प्रदेश के बाहर भी यह अधिकतर लोगों की दूसरी या तीसरी भाषा है, हिन्दी संस्कृत की उत्तराधिकारिणी है और सभी भारतीय भाषाओं की अपेक्षा सरल है। इन विशेषताओं के कारण स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही हिन्दी को भारत की सामान्य या संपर्क भाषा के रूप में स्वीकार किया गया था।

गांधी जी ने हिंदी को जनमानस की भाषा कहा था। इसी हिंदी की खड़ी बोली को अमीर खुसरो ने अपनी भावनाओं को प्रस्तुत करने का माध्यम बनाया था। हिंदी भाषा के इतिहास पर पहले साहित्य की रचनाएं एक फ्रांसिसी विद्धान गरसे- दी- तासी ने की थी, इतना ही नहीं, दूसरी भाषाओं का विस्तृत सर्वेक्षण सर जॉर्ज गियर्सन ने किया था । हिंदी भाषा पर 'थिओलॉजी ऑफ तुलसीदास' नामक पहला शोध कार्य लंदन विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विद्धान 'जे.आर. कारपेंटर' द्वारा प्रस्तुत किया गया था। हमारे वेदों का पहली बार 'मैक्स मूलर' ने अंग्रेजी में अनुवाद किया था, तब जाकर समस्त विश्व के लोगों को हिंदुस्तान के 5000 वर्ष पुराने विरासत का आभास हुआ । आज भी अंग्रेजी से हिंदी शब्दकोश में सबसे बेहतर 'फादर कामिल बुल्के' द्वारा विरचित शब्दकोश को ही माना जाता है ।

स्वतंत्रता के बाद राजसत्ता जनता के हाथ में आई। लोकतांत्रिक व्यवस्था में यह आवश्यक हो गया कि देश का राजकाज, लोक की भाषा में हो, अत: राजभाषा के रूप में हिन्दी को एकमत से स्वीकार किया गया। 14 सितम्बर 1949 ई. को भारत के संविधान में हिन्दी को मान्यता प्रदान की गई। तब से राजकाज में हिन्दी का प्रयोग होने लगा, परन्तु हिन्दी अभी उस स्थान पर नहीं प्रतिष्ठित हुई है जिसकी वह अधिकारिणी है। मैकाले की फैलाई हुई निशाचरी माया में हम अभी तक फँसे हुए हैं। इस संबध में महात्मा गाँधी जी ने 1909 ई. में 'हिन्द स्वराज' नामक छोटी-सी पुस्तक लिखी थी। गाँधी जी ने उस समय स्पष्ट कर दिया था कि भारत के लिए स्वराज का अर्थ क्या है। उनका यह उद्धरण आज भी प्रासंगिक है- 'आप बाघ का स्वभाव तो चाहते हैं लेकिन बाघ नहीं चाहते। मतलब यह हुआ कि आप हिन्दुस्तान को अंग्रेज बनाना चाहते हैं और हिन्दुस्तान जब अंग्रेज बन जाएगा तब वह हिन्दुस्तान नहीं कहा जाएगा लेकिन एक इंग्लिस्तान कहा जाएगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज्य नहीं है'। आज की परिस्थितियों में तो लगता है कि मैकाले का सपना स्वतंत्र भारत में साकार हो गया है। संविधान बनाते हुए भाषा के सवाल पर जिस तरह का समझौता किया गया वह किसी भी स्वतंत्र देश के गौरव के अनुरूप नहीं है। एक विदेशी भाषा के माध्यम से जनतंत्र की सफलता की इच्छा दिवास्वप्न के समान है, जन और तंत्र के बीच जो खाई बढ़ती जा रही है उसका मूल कारण अंग्रेजी भाषा ही है। सारे प्रयासों के बाद भी अंग्रेजों के शासन में भारत की दो प्रतिशत जनसंख्या ही अंग्रेजी समझ सकी। आज भले ही अंग्रेजी समझने वालों का प्रतिशत बढ़ गया है परन्तु अधिकतर देशवासी जिस भाषा को नहीं जानते उस भाषा में राजकाज का चलना जनतंत्र की वास्तविकता सामने ला देता है। आज स्थिति यह है कि जन जिस भाषा में अपनी बात पहुँचाता है उसे समझने में तंत्र असमर्थ है और तंत्र जिन कल्याणकारी नीतियों को लागू करना चाहता है वह जन की समझ में नहीं आती है। इस तरह तंत्र को चलाने वाले विदेशी भाषा के साथ ही विदेशी योजनाओं, विदेशी विचारों और विदेशी संस्कारों को भारत की जनता को थोप रहे

हैं। दुनियाँ के किसी भी स्वतंत्र देश की प्रशासनिक सेवा परीक्षा में विदेशी भाषा ज्ञान की अनिवार्यता नहीं है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का हितैषी नया प्रशासक वर्ग तैयार कर रहा है। ऊँचे नौकरशाहो के गलियारों में यह भी कहते सुना गया है कि प्रादेशिक भाषाओं से आनेवाले नए अधिकारी विदेशियों से अंग्रेजी ज्ञान के बिना ठीक से वार्तालाप नहीं कर सकते। इन्हें विदेश सेवा में नहीं लाया जाना चाहिए। परन्तु हम इस सत्य से मुंह नहीं मोड़ सकते कि भारत में विदेशों से आने वाले राजनयिक या मेहमान अपनी ही भाषा में बोलना पसन्द करते हैं, अंग्रेजी में नहीं। एक हम हैं कि सभी के साथ अंग्रेजी में बात करते हैं। हमें ऐसे दुभाषियों का पैनल तैयार करना चाहिए, जो हमारी भाषा को सीधे विदेशी आगन्तुक की भाषा में समझा सके। इस पैनल से नवयुवकों के लिए रोजगार के नए अवसर प्राप्त होंगे। दूसरे हमारे देश और हमारी भाषा का सम्मान बढ़ेगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि राजकाल में हिन्दी के व्यवहार को बढ़ाने के लिए बहुत कुछ किया गया है और बहुत कुछ किया जा रहा है, परन्तु यह सब कुछ कितने वर्षों में हुआ है। जब सन1815 ई. में जर्मनी स्वतंत्र हुआ तो बिस्मार्क ने आदेश दिया कि एक वर्ष के भीतर सभी राजकर्मचारी अपना-अपना कार्य जर्मन भाषा में करेंगे, जो नहीं करेंगे, उन्हें नौकरी से बर्खास्त कर दिया जाएगा। एक वर्ष में ही जर्मन राजभाषा बन गई। 1917 ई. में रूस की क्रान्ति हुई, तब पहला काम यही किया गया कि जर्मन का प्रयोग हटाकर रूसी भाषा को प्रतिष्ठित किया गया। जहाँ तक हिन्दी भाषा का प्रश्न है, हिन्दी हिन्दुस्तान में रहने वाले अधिकतर हिन्दुस्तानियों की केवल मातृभाषा ही नहीं थी बल्कि स्वतंत्रता से पहले कई रियासतों की राजभाषा थी, भारत भर में शिक्षा का माध्यम थी और इसमें प्रचुर ललित एवं उपयोगी साहित्य था। फिर स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त इसे 15 वर्षों के लिए टाल दिया गया। पता नहीं क्यों तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने तमिलनाडु या नागालैंड के नेताओं को आश्वासन दिया कि जब तक आप चाहेंगे अंग्रेजी राजभाषा बनी रहेगी। तब से अब तक प्रेरणा और प्रोत्साहन द्वारा हिन्दी के प्रचार-प्रसार को बढ़ाया जा रहा है।

आजादी के बाद जब स्वतंत्र भारत का संविधान बना तो उसमें व्यवस्था की गई कि विभिन्न राज्यों का कामकाज क्षेत्रीय भाषाओं में होगा तथा केंद्रीय सरकार एवं अन्तर्राजीय पत्राचार और केंद्र एवं राज्यों के बीच होने वाले पत्रकार की भाषा हिंदी होगी । संविधान के अनुच्छेद 343 (1) के अनुसार संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी ही हो । राजभाषा हिंदी की वर्तमान दशा का अवलोकन करने पर पता चलता है कि तमाम सरकारी प्रयासों के बाद भी हिंदी अभी भी उपेछित है । भाषा की समस्या के कारन हमारे वैज्ञानिक, शोधार्थी, डॉक्टर वर्ग और आम जनता के बीच एक खाई बनी हुई है । नि:संदेह इस खाई को दूर करने का कार्य हिंदी ही कर सकती है । अंग्रेजी के बिना विज्ञान नहीं, यह सच नहीं है। वास्तव में विज्ञान एक विचार प्रक्रिया है। हिंदी की अपनी उपलब्धि, अपनी विचार प्रक्रिया, चिंतन मनन है । जब हम देश के अंदर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाते हैं तो हमारी संपर्क भाषा हिंदी ही होती है। जब दो भिन्न क्षेत्रीय भाषा के लोग आपस में मिलते हैं तो अनायास हिंदी संपर्क भाषा बन जाती है ।

भारत सरकार, राजभाषा विभाग द्वारा कम्प्यूटरो एवं अन्य उपकरणों के माध्यम से हिंदी के प्रयोग को व्यापक एवं सरल बनाने के उद्देश्य से अनेक कारगर कदम उठाए गए हैं। परिणाम स्वरूप इन आधुनिक उपकरणों के माध्यम से हिंदी में काम करना अत्यंत सरल एवं रुचिकर हो गया है। सूचना प्रौद्योगिकी के नवीन आविष्कारों ने भी हिंदी के साहित्यिक स्वरुप को प्रयोजनमूलक बनाने में योगदान दिया है तथा यूनिकोड की सहायता से बहुत कम समय और अभ्यास से अधिकारी अपना कार्य हिंदी में करने में समर्थ हो जाते हैं। माइक्रोसॉफ्ट की 'कोर्टाना' अमेजॉन की 'एलेक्सा' या गूगल का 'गूगल असिस्टेंट' की मदद से हिंदी में बोलकर कोई भी काम आसानी से टाइप करवाया जा सकता है।

हम सब के योगदान के बिना हिंदी को बढ़ावा देना नामुमकिन है। हम सबके निरंतर प्रयास से ही विश्व पटल पर हिंदी को वह सम्मान मिल सकेगा जिसकी वह अधिकारिणी है। हिंदी हमारी राजभाषा के अलावा भारत वर्ष की संस्कृति एवं परंपरा का आधार है। विविधता से भरे इस देश को, हिंदी ही एक सूत्र में बांधने का कार्य करती है। राजनीति की भाषा होनी चाहिए परंतु भाषा की राजनीति नहीं होनी चाहिए। हिंदी केवल इसलिए महान नहीं है कि इसमें कुछ लोग कविता, लेख, अनुवाद कर लेते हैं बल्कि यह इसलिए महान है कि यह हृदय से हृदय को जोड़ती है, मिलाती है लेकिन अलगती नहीं है।

आदि काल से ही समस्त संसार में भारतखण्ड की देवियों की पूजा की जाती थी

श्री आर. डी. शर्मा एवं श्री एस. अग्निहोत्री

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम

हिन्दू धर्म विश्व के सभी धर्मों में सबसे पुराना धर्म है। ये वेदों पर आधारित धर्म है, जो अपने अन्दर कई अलग अलग उपासना पद्धतियाँ, मत, सम्प्रदाय और दर्शन समेटे हुए है। अनुयायियों की संख्या के आधार पर ये विश्व का तीसरा सबसे बड़ा धर्म है, संख्या के आधार पर इसके अधिकतर उपासक भारत में हैं और प्रतिशत के आधार पर नेपाल में है। हालाँकि इसमें अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती है, लेकिन वास्तव में यह एकेश्वरवादी धर्म है। हिन्दी में इस धर्म को सनातन धर्म अथवा वैदिक धर्म भी कहते हैं। इण्डोनेशिया में इस धर्म का औपचारिक नाम 'हिन्दु आगम' है। हिन्दू केवल एक धर्म या सम्प्रदाय ही नहीं है अपितु जीवन जीने की एक पद्धति है 'हिंसायाम दूयते या सा हिन्दु' अर्थात् जो अपने मन, वचन, कर्म से हिंसा से दूर रहे वह हिन्दू है और जो कर्म अपने हितों के लिए दूसरों को कष्ट दे वह हिंसा है। भारत (और आधुनिक पाकिस्तानी क्षेत्र) की सिन्धु घाटी सभ्यता में हिन्दू धर्म के कई चिह्न मिलते हैं। इनमें एक अज्ञात मातृदेवी की मूर्तियाँ, शिव पशुपति जैसे देवता की मुद्राएँ, लिंग, पीपल की पूजा, इत्यादि प्रमुख हैं। इतिहासकारों के एक दृष्टिकोण के अनुसार इस सभ्यता के अन्त के दौरान मध्य एशिया से एक अन्य जाति का आगमन हुआ, जो स्वयं को आर्य कहते थे और संस्कृत नाम की एक हिन्द यूरोपीय भाषा बोलते थे। एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग स्वयं ही आर्य थे और उनका मूलस्थान भारत ही था। आर्यों की सभ्यता को वैदिक सभ्यता भी कहते हैं। पहले दृष्टिकोण के अनुसार लगभग 1700 ईसा पूर्व में आर्य अफगानिस्तान, कश्मीर, पंजाब और हरियाणा में बस गये। तभी से वो लोग (उनके विद्वान ऋषि) अपने देवताओं को प्रसन्न करने के लिये वैदिक संस्कृत में मन्त्र रचने लगे। पहले चार वेद रचे गये, जिनमें ऋग्वेद प्रथम था। उसके बाद उपनिषद जैसे ग्रन्थ आये। हिन्दू मान्यता के अनुसार वेद, उपनिषद आदि ग्रन्थ अनादि, नित्य हैं, ईश्वर की कृपा से अलग-अलग मन्त्रद्रष्टा ऋषियों को अलग-अलग ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त हुआ जिन्होंने फिर से उन्हें लिपिबद्ध किया। बौद्ध और अन्य अनेक धर्मों के अलग हो जाने के बाद वैदिक धर्म मे काफ़ी परिवर्तन आया। नये देवता और नये दर्शन उभरे। इस तरह आधुनिक हिन्दू धर्म का जन्म हुआ।

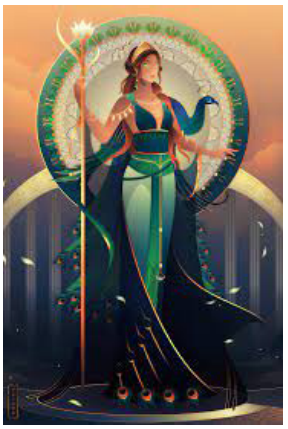

हेरा एवं जूनो

भारतवर्ष की संस्कृति में आदिकाल से ही देवी-देवताओं को अलौकिक शक्तियों के रूप में पूजा जाता है। कुछ संस्कृतियों में देवी को धरती माता, करूणा की देवी या वनस्पति की देवी के रूप में पूजा जाता है। अन्य संस्कृतियों में देवी को युद्ध, मृत्यु और विनाश के साथ ही निर्माण, चिकित्सा और जीवन की देवी के रूप में पूजा की जाती है। अनेक धर्मों में पूजा में देवी केन्द्रीय स्थान रखती हैं। हिन्दू धर्म में अनेक देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। जहां तक हिन्दू देवियों की पूजा का प्रश्न है, भारत ही नहीं बल्कि विश्व के अनेक देशों में देवियो की पूजा विभिन्न रूपों में की जाती है। हर प्रकार के दुख, दर्द और समस्या को हमारे जीवन से निकालने और उसमें खुशियों का अलौकिक प्रकाश भरनेवाली 'दीपावाली' के दिन मां लक्ष्मी की पूजा का विधान है। धन समृद्धि के लिए हिन्दू धर्म में लक्ष्मी पूजा का विधान अनन्त काल से है। मान्यता है कि देवी लक्ष्मी धन की देवी हैं। इनकी कृपा से धन और वैभव प्राप्त होता है लेकिन ऐसा नहीं है कि सिर्फ भारत में ही लक्ष्मी की पूजा होती है। उन्हें दुनियाभर के लोग अलग-अलग रूपों में पूजते हैं। हालांकि भारत में जिस तरह से लक्ष्मी को विष्णु की पत्नी और कमल पर विराजमान देवी माना गया है, अन्य देशों में माता का ऐसा स्वरूप नहीं है। हिन्दू धर्म में बताया गया है कि देवी लक्ष्मी का वाहन उल्लू है लेकिन यूनान के धार्मिक ग्रंथों में लक्ष्मी का वाहन मोर बताया गया है। यूनान में देवी लक्ष्मी को हेरा एवं जूनो नाम से जाना जाता है।

सीरिन देवी

यहां माना जाता है कि हेरा आकाश में रहती हैं और खेतों को हरा-भरा रखती हैं। कृषि की देवी होने के कारण जूनो देवी को ग्राम लक्ष्मी के नाम से भी जाना जाता है। पुराणों की कथा के अनुसार एक बार देवी लक्ष्मी धरतीवासियों से रूठ गईं। इस वजह से अन्न का

उत्पादन बंद हो गया। अकाल के कारण जीव-जंतु भूख-प्यास से व्याकुल होकर तड़पने लगे, लक्ष्मी की नाराजगी दूर हुई तो वही अन्नपूर्णा रूप में लोगों के दु:ख दूर करने प्रकट हुईं। रोम में लक्ष्मी माता के अन्नपूर्णा रूप की पूजा होती है। अन्न प्रदान करने वाली लक्ष्मी देवी को रोम में सीरिन देवी के नाम से जाना जाता है।

फ्लोरा देवी

तस्वीरों में लक्ष्मी माता को कमल पर या उल्लू पर विराजमान दिखाया गया है। लक्ष्मी माता के हाथों में कमल का एक फूल भी होता है जो दर्शाता है कि माता को फूल पसंद है। फ्रांस में फ्लोरा देवी को लक्ष्मी का स्वरूप माना जाता है।

यह फूलों से श्रृंगार करती हैं और खुशियों के फूल खिलाती हैं। भारत में देवी लक्ष्मी को जिस तरह सुख समृद्धि और सौन्दर्य की देवी के रूप में पूजा जाता है उसी प्रकार फ्रांस में फ्लोरा देवी को समृद्धि और सौन्दर्य की देवी माना जाता है। फ्रांस में महिलाएं फ्लोरा देवी की कृपा पाने के लिए फूलों से बालों को सजाती हैं। सूडान देश में लक्ष्मी पूजा का रूप प्रकृति से मानते हैं। इस देश में धान का पौधा धन को पैदा करने वाला माना गया है। इसलिये यहां के लोग लक्ष्मी को धान पैदा करने वाली देवी मानते हैं और वे उसकी उसी रूप में पूजा करते हैं। जावा देश में वहां की स्त्रियां अपनी सुन्दरता को बढ़ाने के लिये आभूषण पहनती थी। उन प्राचीन आभूषणों पर 'श्री' नाम का निशान बना होता था जो लक्ष्मी का रूप माना जाता है। इसीलिए शायद जावा के निवासी लक्ष्मी को 'सोने की देवी' के नाम से पूजा करते हैं। कहा जाता है कि बाली द्वीप में यहां के राजाओं की लक्ष्मी रानी के रूप में रहती थी लेकिन जब उनको विष्णु से प्यार हो गया तो वह मृत्यु को सिधार गयी। विभिन्न जाति के पौधे उनकी समाधि पर उगे पाये गये लेकिन उनकी नाभि पर धान का पौधा उगा पाया गया। उसे ही वह धनलक्ष्मी का पौधा मानकर पूजा करते हैं। ग्रीस देश में सम्पन्नता की देवी को 'री' के रूप में 'राई' को धन माना जाता है। रोम देश के 'लम्पकस' से प्राप्त एक रजत की थाली पर लक्ष्मी का 'भारत लक्ष्मी' स्वरूप दिखाई दिया है।

मिस्त्र की देवी आइसिस

कम्बोडिया में शेषशाई विष्णु की एक प्रतिमा मिली है। इसमें लक्ष्मी जी को विष्णु के पांव दबाते दिखाया गया है, यह कांसे की बनी है। जापान में 16वीं सदी में बने एक लक्ष्मी मंदिर का पता चला है। इसमें लक्ष्मी को एक जापानी महिला के रूप में दिखाया गया है। श्रीलंका में पोलोम रुवां नामक स्थान पर शिव दंडल में खुदाई हुई जिसमें भारतीय देवी-देवताओं के साथ कमल पर विराजमान लक्ष्मी की प्रतिमा मिली है। तक्षशिला में भी लक्ष्मी की एक विशालकाय सुंदर, आलीशान प्रतिमा है जिसके एक हाथ में द्वीप प्रज्जवलित है और यह लक्ष्मी मुर्ति प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम में सुरक्षित है। इस तरह हमारे देश के अतिरिक्त विदेशों में भी धन-लक्ष्मी की पूजा की विभिन्न परम्पराएं कायम हैं जिनमें सर्वमान्य यह है कि धन लक्ष्मी सुख, समृद्धि व सम्पन्नता की प्रतीक है। इसलिये उनकी विभिन्न तरह से विभिन्न देशों में पूजा की जाती है। हिन्दू धर्म में उल्लेख मिलता है कि मां दुर्गा अपने हाथों में नाग धारण करती हैं लेकिन मिस्त्र में धन समृद्धि की देवी आइसिस को माना गया है। मिस्त्र की यह देवी अपने हाथों में सांप धारण करती हैं।

मिस्त्रवासियों का मानना है कि यह देवी संकट के समय लोगों की रक्षा करती हैं। इस देवी की कृपा से ही सुख, संपत्ति एवं खुशियां आती हैं। भारत की तरह मिस्त्र में भी अवतारवाद की मान्यता है। यहां माना जाता है कि देवी आइसिस ने महारानी हेत्त के रूप में अवतार लिया था। गाय को हिन्दू धर्म में लक्ष्मी का स्वरूप माना गया है। संसार में सबसे ज्यादा दूध उत्पादन करने वाला देश डेनमार्क में भी खुशी और समृद्धि की देवी गाय को माना गया है। यूरोप में नीरिड एवं ओसियाड को समृद्धि की देवी माना जाता है। इस देवी का संबंध भी दूध उत्पादन से है।

डायना देवी

भारत में देवी उपासना का बहुत महत्व है। हिंदू धर्म के अनुसार साल में चार नवरात्रि आती है, जिनमें दो गुप्त व दो प्रकट नवरात्रि होती हैं। इन सभी नवरात्रि में माता के विभिन्न स्वरूपों का पूजन किया जाता है। हिंदू धर्म के अंतर्गत किए जाने वाले हर शुभ कार्य में देवी का पूजन करना अनिवार्य माना गया है। मगर भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी शक्ति उपासना का प्रचलन है। अंतर केवल नाम एवं पूजन विधि का है। दुनिया के विभिन्न देशों में देवी शक्ति की उपासना विभिन्न प्रकार से की जाती है- यूनान में नेमिशस व डायना नामक देवी की पूजा की जाती है।

नेमिशस को वहां प्रतिशोध की देवी माना जाता है। मान्यता है कि यह शक्ति आसुरी प्रवृत्तियों का नाश करती हैं। वहां डायना को दुर्गा मानते हैं। यूनान के राजा शक्ति पूजा के रूप में लाल वस्त्र पहन नारी का श्रृंगार कर यानी नारी रूप धारण करके नेमिशस और डायना की पूजा करते थे। यूनान के राजा फिसियाड के समय में तो समूचे देश में शक्ति पूजा की जाती थी। वहां के ओलम्पिक पर्वत पर शक्तिपीठ है। मिश्र की देवी का नाम आइसिस है। वे सर्पधारिणी रुद्राणी हैं। मान्यता है कि वे मिश्र पर आए संकटों को हरती हैं। मिश्रवासियों का मानना है कि उनकी महारानी हेस दुर्गा की अवतार थीं। रामयुग में भी इस क्षेत्र का वर्णन मिलता है। बताया जाता है सीताजी की खोज में वानर् जिस लोहित सागर तक गए थे, वह वर्तमान में लाल सागर है, चीन में कात्यायनी देवी के रूप में नील सरस्वती की उपासना होती है। नील सरस्वती दस महाविद्याओं में शामिल देवी तारा ही हैं।

वेस्ता देवी

रोम में वेस्ता की मान्यता थी। वेस्ता के मंदिर की वेदी में सदैव अग्नि जलती थी। विवाह की कामना से कुमारियां वेस्ता की पूजा करती थीं। कोरिया में औषधि देवी की पूजा होती है। वे कोरिया की शक्ति देवी हैं। उत्तरी कोरिया में सूर्यादेवी की पूजा होती है। इटली में फेमिना सौंदर्य की देवी मानी जाती हैं। वे नारियों में उल्लास का संचार करती हैं। पर्व के अवसर पर देवी फेमिना की भव्य शोभायात्रा निकाली जाती है। फ्रांस की फ्लोरा देवी फूलों की देवी हैं। अफ्रीका में देवी कुशोदा की पूजा विभिन्न रूपों में होती है। पौराणिक कुश द्वीप आज के अफ्रीका को माना जाता है। वहां के आदिवासियों की प्रमुख देवी कुशोदा हैं।

बेंजाइतेन देवी

जापान में माता सरस्वती को 'बेंजाइतेन' कहते हैं। जापान में उनका चित्रण हाथ में एक संगीत वाद्य लिए हुए किया जाता है। जापान में वे ज्ञान, संगीत तथा 'प्रवाहित होने वाली' वस्तुओं की देवी के रूप में पूजित हैं। बेंजाइतेन हिन्दू देवी सरस्वती की तरह ही एक जापानी बौद्ध देवी हैं। बेंजाइतेन की पूजा छठीं से आठवीं सदी से जापान में हो रहा है। माता सरस्वती की पूजा 'गोल्डेन लाइट के सूत्र' का चीनियों द्वारा अनुवाद के बाद जापान पहुंचा। इसका उल्लेख लोटस सूत्र में भी मिलता है। इसमें माता सरस्वती को (बीवा) एक जापानी परम्परागत वीणा को पकड़े हुए दिखाया गया है। बेंजाइतेन बौद्ध एवं शिंटो जाति द्वारा अत्यधिक पूजनीय हैं। चीनी बियानकाईटियान और जापानी बेंजाइतेन के नाम से माता सरस्वती को वाकपटुता की देवी के रुप में पूजा करते हैं। जापान में बेंजाइतेन और बाली (इंडोनेशिया) में हिन्दू धर्म की सरस्वती देवी को एक संगीत उपकरण के साथ दिखाया गया है। माता सरस्वती का मंदिर जापान के तटीय क्षेत्र और द्वीप समूह में अधिक है। रिगवेद (6-61-7) में माता सरस्वती को तीन मुंह वाले सांप (व्रिटा) का बध करने का श्रेय दिया जाता है। शायद इसलिए जापान में सांप और ड्रेगन के साथ सरस्वती (बेंजाइतेन) माता को दिखाया गया है। जापान में कई स्थानों पर इनका मंदिर है जैसे सेगानी खाड़ी के इनलोशिमा द्वीप में, चीकुबु द्वीप के बीवा झील में, सेटो इन्लैंड सागर के इट्सुकुशिमा द्वीप में तथा पांच मुंह वाले ड्रेगन के साथ इनोशिमा इजी में। एक जापानी बौद्ध मिक्षु कोकेई के अनुसार 1047 ई. में इनोशिमा मंदिर में रखे गए ऐतिहासिक दस्तावेज के अनुसार बेंजाइतेन ड्रेगन राजा मुनेसूची की तीसरी बेटी हैं जिन्हें संस्कृत में अनावतपा के रूप में जाना जाता है। माता सरस्वती जापान में लोकप्रिय देवी हैं। 1832 में हुई गणना के अनुसार केवल टोक्यों शहर में ही सरस्वती माता की 131 मंदिरे थीं अब तो और अधिक है। जापानी संस्कृति के लोकाचार में सरस्वती पूजा की व्यापकता दिखाई देती है। इसी तरह जापान के अन्य शहरों जैसे क्योटो, ओसाका, नारा में सरस्वती मंदिर है । उबुड, बाली, इंडोनेशिया में भी सरस्वती माता का मंदिर है। इंडोनेशिया में हर छह महीने में (210 दिन) में हिन्दुओं द्वारा सरस्वती दिवस के रूप में मनाया जाता है। सरस्वती माता की पूजा हिन्दू धर्म के अलावा अन्य धर्मों में भी किया जाता है। वह जैन धर्म में भी पूजी जाती हैं। वह जैन धर्म में अंधकार और अज्ञान को दूर करने वाली तथा दुखों का नाश करने वाली बताया गया है। तिब्बत में वह बज्र- सरस्वती के रूप में जानी जाती हैं और अक्सर मंदिरों में एक बज्र धारण किए हुए दिखती हैं। कैलिफोर्नियां में काउंटी रन एडवर्ड डीन संग्रहालय और गार्डन में 19 फरवरी को बसंत पंचमी के रूप में मनाया जाता है। दक्षिण एशिया के अलावा थाइलैण्ड में सुरसवदी, वर्मा में थुराथाडी एवं अन्य देशों में भी सरस्वती माता की पूजा होती है।

सरस्वती माता की तरह ही दुर्गा माता की भी पूजा अनेक देशों में धूम धाम से की जाती है। श्री संथा दुर्गा देवी सेना शिविर, सुंगाई पेटानी, केदाह में माता दुर्गा का मंदिर है। संथम शब्द का अर्थ होता है शान्ति और सौहार्द। यह सन् 1938 की बात है जब सुंगाई पेटानी सेना शिविर में नेपानी गुर्खा और यूरोपीय सेना ने एक काले नाग को देखा। चूंकी नाग हिन्दुओं में शुभ माना जाता है इसलिए नाग को मारा नहीं गया और उसे मेनांग द्वीप में भेज दिया गया। दूसरे दिन उसी स्थान पर एक और नाग देखा गया। यह बात आग की तरह पूरे सेना शिविर में फैल गई और यहां पर एक काली माता के मंदिर का निर्माण करने पर विचार किया गया।

गुर्खाओं ने यहां पर अंकारा काली अम्मा के नाम पर एक छोटे से मंदिर का निर्माण किया। परन्तु पुराने परम्परा के अनुसार गुर्खा यहां पर पशु बलि करते थे। सन् 1972 में गुर्खा नेपाल की तरफ रूख किए और काली माता की मुर्ति को अपने साथ नेपाल ले आए। उसके बाद मलेशिया सेना ने वहां एक दुर्गा माता के मुर्ति की स्थापना की और पशु बलि को बन्द करवा दिया। कई लोगों ने मंदिर को नष्ट करना चाहा परन्तु वे खुद नष्ट हो गए। तब से अब तक वहां लगातार माता दुर्गा की पूजा-अर्चना की जाती है। सेन्ट्रल जावा, इंडोनेशिया में कंडी प्रम्भनन नामक मंदिर का निर्माण 9वीं शताब्दी में किया गया। इस मंदिर में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव की त्रिमुर्ति है। यह इंडोनेशिया का सबसे बड़ा मंदिर है और यहां माता दुर्गा का भी मंदिर है। यहां माता दुर्गा को महिषासुरमर्दिनी के रूप में पूजा जाता है। भारतवर्ष में विशेषकर बंगाल क्षेत्र में सर्प की देवी के रूप में मनसा माता की पूजा की जाती है। दक्षिण भारत में भी नाग देवी की पूजा की जाती है। केरला के नायर और कर्नाटक के टुलु बंट सम्प्रदाय के लोग आज भी नाग देवी की पूजा करते हैं।

मिश्र की नाग देवी वाइजेट

पर्सिया में पोट्रीमस के रूप में नाग देवी की पूजी की जाती थी तथा जर्मनी में जुलुस जनजाति द्वारा नाग देवी की पूजा की जाती है। प्राचीन काल में युनानियों द्वारा मिश्र की नाग देवी वाइजेट की पूजा की जाती थी। रोम में भी भारत की तरह ही शक्ति की पूजा की जाती है। डॉ. व़ीर ऋषि के अनुसार भारतवर्ष में जिस प्रकार से दुर्गा माता की पूजा की जाती है उसी प्रकार रोम में काली सारा की पूजा की जाती है।

बंगलादेश में ढ़ाकेश्वरी मंदिर में काली माता की पूजा की जाती है। इस मंदिर का निर्माण बल्लाल सेन, सेना राजवंश द्वारा 12वीं सदी में किया गया था। कई शहरों में इस मंदिर के नाम पर मंदिर है। यह ढ़ाका की सांस्कृतिक विरासत का एक अनिवार्य हिस्सा है। कई शोधकर्त्ताओं का मानना है कि यहां सती के मुकुट से गहना गिरा था जहां शक्तिपीठ है। मंदिर मूल रूप से 800 साल पुराना है। इसी प्रकार अफगानिस्तान की राजधानी के कोह-ई-आसामाई के पहाड़ी में आसामाई मंदिर है। पहाड़ी का नाम आशामाई, आशा की देवी के कारण पड़ा। आशा की देवी प्राचीन काल से पहाड़ी की चोटी पर उपस्थित हैं। अखण्ड ज्योति कई सदियों से निरंतर जलती हुई है। प्रसिद्ध काबुल मंदिर के नाम पर न्यूयार्क, फरीदाबाद, फ्रैंकफर्ट और एम्स्टर्डम में भी आशामाई मंदिर है। दक्षिण भारत की एक देवी हैं मरियम्मा जो वर्षा की देवी हैं। मरियम्मा दुर्गा और काली के रूप में भी जानी जाती है तथा उत्तर भारत में शितला माता के रूप में पूजी जाती हैं। यह देवी कहीं ग्राम देवी के रूप में भी पूजी जाती हैं। भारतवर्ष के अलावा मरियम्मा माता का मंदिर मॉरीशस, श्रीलंका, मलेशिया, सिंगापुर, थाईलैंड, फिजी, गुयाना, वियतनाम, जर्मनी, दक्षिण अफ्रीका और कराची, पाकिस्तान तथा इंडोनेशिया में है। प्रवासी तमिलों द्वारा ये मंदिर बनवाया गया है। त्रिनिदाद में काली पूजा की जाती है तथा इन्हें पूजने वाले मद्रासीज के नाम से जाने जाते हैं जो भारत-त्रिनिदाद के एक समुह हैं और गन्ना रोपण हेतु गिरमिटिया मजदूर के रूप में त्रिनिदाद में काम करने के लिए मद्रास से गए थे। यहां का हिन्दू उत्सव सिपारिया उत्सव के नाम से जाना जाता है।

ढ़ाकेश्वरी मंदिर

यहां की सिपारी माई काली माता के रूप में एक विशेष हिन्दू देवी हैं जिनकी पूजा यहां बड़े धूम-धाम से की जाती है। मां काली का ही एक रूप है मरीजुआना जो जीवन और मृत्यु की देवी हैं। जर्मनी में अनेक काल से फ्रेया के रूप में मां काली की पूजा की जाती है। भारतवर्ष से विशेषकर बंगाल से काम-काज की तलाश में गए भारतीय विदेशों में बड़े धूम-धाम से दुर्गा पूजा करते हैं। ब्रिटेन में बड़े साज-बाज के साथ दुर्गा पूजा का पर्व मनाया जाता है तथा गुजराती समुदाय के लोग गरबा नृत्य करते हैं। इसी प्रकार चीन के शंघाई में, मस्कट, यूरोप, अस्ट्रेलिया के सिडनी, मेलबर्न, जर्मनी के बर्लिन, फ्रेंकफर्ट, हमबर्ग, स्टूटगार्ड और मुनीच में, फ्रांस के पेरिस में, अमेरिका के न्यूयार्क, न्यूजर्सी, इंडोनेशिया के जकार्ता तथा टांगरांग में, मलेशिया तथा सिंगापुर में भी दुर्गा माता की पूजा की जाती है।

जर्मनी की फ्रेया देवी

श्रीलंका सरकार ने 'रामायण' में आए लंका प्रकरण से जुड़े तमाम स्थलों पर शोध कराकर उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध कर उक्त स्थानों को पर्यटन केंद्र

के रूप में विकसित करने की योजना बना ली है। इसके लिए उसने भारत से मदद भी मांगी है। वेरांगटोक जो महियांगना से 10 किलोमीटर दूर है वहीं पर रावण ने सीता का हरण कर पुष्पक विमान को उतारा था । महियांगना मध्य श्रीलंका स्थित नुवारा एलिया का एक पर्वतीय क्षेत्र है। इसके बाद सीता माता को जहां ले जाया गया था उस स्थान का नाम गुरुलपोटा है जिसे अब 'सीतोकोटुवा' नाम से जाना जाता है। यह स्थान भी महियांगना के पास है। एलिया पर्वतीय क्षेत्र की एक गुफा में सीता माता को रखा गया था जिसे 'सीता एलिया' नाम से जाना जाता है। यहां सीता माता के नाम पर एक मंदिर भी है।

सीतोकोटुवा

यही नहीं विदेशों में लोग शान्ति की तलाश में भगवान श्री कृष्ण और राधारानी के भक्ति में लीन हो रहे हैं। अमेरिका के टेक्सस स्थित आस्टीन शहर में गोविन्द धाम को 220 एकड़ में बनाया गया है। भले ही यहां कान्हां का असली ब्रज न सही परन्तु यहां के कण कण में ब्रज की खुशबू मिलती है। यहां एक विशालकाय मंदिर के दायरे में ब्रज को बसाया गया है। यहां भगवान श्री कृष्ण और राधारानी के रास लीला को दर्शाने का प्रयास किया गया है। इसी क्रम में निम्बार्क सम्प्रदाय के लोग राधारानी के गुणगान को देश-विदेश तक फैलाए हुए हैं।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि हिन्दू देवियों की पूजा भारतवर्ष या उसके समीपवर्ती देशों में ही नहीं बल्कि दूर-दूर तक फैला हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण है भारतवर्ष की संस्कृति और सभ्यता जो प्राचीन काल में अत्यधिक समृद्ध थी। आज जैसे भारतवर्ष के लोग काम-काज या व्यापार के सिलसिले में अन्य देशों में विशेषकर पश्चिमी देशों में जा रहे हैं वैसे ही प्राचीन काल में अन्य देशों से लोग व्यापार, काम-काज के लिए भारत आते थे। आज हम उच्च शिक्षा के लिए यूरोप, अमेरिका या ब्रिटेन की ओर रूख कर रहे हैं वैसे ही शिक्षा प्राप्त करने के लिए बाहर से लोग यहां आते थे। नालंदा और तक्षशिक्षा कभी शिक्षा का केन्द्र हुआ करता था। यहां से जब लोग शिक्षा हासिल कर या व्यापार कर जब वापस जाते थे तो हमारी संस्कृति भी उनके साथ जाती थी। इसी प्रकार हिन्दू संस्कृति, संस्कार, पूजा पाठ आदि अपने दिव्य गुणों के कारण पूरे विश्व में प्रकाशवान हुआ और पूरे विश्व को सुख और शान्ति का संदेश दिया। शायद इसलिए भारतवर्ष को शिरोमणि माना गया और सोने की चिड़िया कहा गया।

अमेरिका के टेक्सस शहर में स्थित गोविन्द धाम

आज की अंग्रेजी शिक्षा ने हमें निकम्मा और नकलची बना दिया है। कोई विदेशी भाषा हमारी संस्कृति और हमारे स्वरूप तथा भाव को व्यक्त करने की शक्ति नहीं रखती।

-डॉ. राजेन्द्र प्रसाद

डायरी

-सत्य प्रकाश 'भारतीय' एवं रीता प्रकाश

'डायरी लिखना शुरू करो।' समसामयिक पत्र में काम करने वाले पति ने अपनी गृहिणी से उसके चेहरे पर छायी उदासी को देखते हुए तत्क्षण समाधान प्रस्तुत करने के उद्देश्य से कहा ।

'मुझे डायरी लिखना नहीं आता। डायरी लिखना तो क्या? मुझे लिखना ही नहीं आता। मुझे लिखना आता तो क्या मेरा यही हाल होता!' पत्नी ने संयुक्त परिवार में आये दिन देवरानी, जेठानी, सास, ननद के साथ नोंक-झोंक से उत्पन्न रोज की समस्या से परेशान होते हुए कहा ।

पति को समझते देर न लगी कि इस वक्त कुछ समझाने का फायदा नहीं।

शाम को जब पति लौटा तो देर हो चुकी थी। सीधे जाकर उसने पत्नी के हाथ में एक बंद पैकेट रख दिया। पत्नी ने झट उसे खोला तो उसमें से खूबसूरत रंग-बिरंगे आवरण वाली एक डायरी निकली ।

पहले तो पत्नी ने सोचा, कह दे कि जब मुझे लिखना ही नहीं आता तो आप डायरी लाकर क्यों पैसे बरबाद करते हैं। लेकिन वह इस डायरी की कोमलता और सुन्दरता देखकर मोहित हो गयी। जैसे वह कोई अति मनोरम वस्तु हो जिसे घर के शीशे वाली आलमारी में सजाकर रखा जा सकता हो। उसकी आँखें चमक उठीं। उसके मुँह से अनायास ही निकल गया,

'कितनी सुन्दर है! पन्ने भी कितने सुन्दर हैं!' कोई भी सुन्दर वस्तु देखकर इतनी खुशी हो सकती है, चाहे वह वस्तु उसके काम की हो या न हो - यह बात पत्रकार पति को अभी-अभी समझ आयी। समाचार-पत्र के लिए दर्जनों समाचार लिखते-लिखते पति को यह देखने का मौका ही नहीं मिला था कि किसी भौतिक वस्तु में इतनी सुन्दरता होती है। वह तो रोज़-रोज़ एक ही तरह के रसविहीन, चोरी, लूट, गंदी राजनीति, बलात्कार आदि के समाचार लिख-लिख कर स्वयं भी रसहीन हो गया था। पत्नी की इस क्षणिक खुशी को देखकर नीरसता में रस का जन्म हो गया, ठीक वैसे ही जैसे किसी सूखे पड़े गमले के पौधे में पानी देने से वह हरा हो जाता है । उसके अन्दर छिपा साहित्य का बोध जग गया। गृहिणी गमले की तरह घर के वातावरण में मुरझाने लगी थी । पति को पत्नी इस समय साहित्य की कोई पुस्तक-सी दिखाई दी जिसे अर्से से उसने कभी इस दृष्टि से देखा ही नहीं था।

ऐसी साहित्यिक पुस्तकों की भी? में पत्नी उस डायरी को भी रखने के उद्देश्य से आलमारी की तरफ बढ़ी ।

' अरे! क्या करने जा रही हो ?' पति ने कहा ।

'क्यों! इसे आलमारी में रखने जा रही हूँ', पत्नी ने अपने मन के बोझ को कुछ हलका महसूस करते हुए कहा ।

'मैं इसे लिखने के लिए लाया हूँ ।' पति ने कहा ।

'कहा ना, मुझे लिखने-विखने नहीं आता!',पत्नी अब थोड़ी-सी झुँझला गयी थी। उसे लग रहा था कि उस पर बच्चों जैसी जबरदस्ती की जा रही है पढ़ने-लिखने के लिए।

'डायरी लिखने के लिए 'लिखने आने' की क्या जरूरत है?', पति ने पत्नी के मनोभावों को भाँपते हुए, पहेलियाँ बुझाने के अंदाज में कहा ।

'क्यों पहेलियाँ बुझा रहे हो? लिखने नहीं आएगा तो लिखेंगे कैसे? और घर में इतने लोग हैं । सबका खाना बनाना होता है। बच्चे हैं । उन्हें स्कूल के लिए तैयार करना होता है । फिर समय कहाँ है?', पत्नी ने कहा ।

'पहेली का उत्तर तो तुम्हारे पास ही मिल गया ।'

'क्या मतलब!'

'मतलब यह कि लिखना न आना समस्या नहीं है। तुमने भी स्नातक की पढ़ाई की है, कुछ न कुछ तो लिखा होगा न तभी तो पास हुई हो, है ना', पति कुछ विनोद की मुद्रा में आ गया था।

'क्या मतलब है तुम्हारा! मैं भी अपनी कक्षा में अच्छे अंक प्राप्त किया करती थी। घर में अपने भैया की पढ़ाई सुन-सुन कर मैं याद कर लिया करती थी', अपने ऊपर पढ़ाई न करने का लांछन लगते देख पत्नी ने अपने पक्ष में और भी कई तर्क पेश किए ।

'समस्या है समय की! है ना!', पति ने अपने तर्क पर मन ही मन खुश होते हुए कहा ।

'हाँ ! समय कहाँ है। तुम्हारा तो काम ही है लिखना, तो तुम लिखते रहते हो।', पत्नी ने बना-बनाया बहाना बनाने की कोशिश की ।

'क्या सचमुच तुम्हारे पास समय नहीं है। सोचो। पन्द्रह मिनट रोज। सोने से पहले। अगर हम पन्द्रह मिनट बाद सोयेंगे या पन्द्रह मिनट पहले सुबह उठ कर लिख लें डायरी तो ...' पति की इस तरह की बातें सुनकर पत्नी सोच में पड़ गई कि उसने इस तरह तो कभी सोचा ही नहीं ।

'समस्या समय की कमी की नहीं है? समस्या है इच्छा शक्ति की। समय तो सब को समान ही मिलता है। प्रधानमंत्री को भी 24 घंटे और एक आम आदमी को भी 24 घंटे। अब उसमें से कौन कितना समय निकालकर उसका इस्तेमाल करता है यह तो उसी पर निर्भर करता है।'

'हाँ! ये तो है ।'

'तो लिखना आरंभ करो।'

'क्या लिखें? यह भी तो नहीं मालूम।'

'अच्छा, यही लिखो कि मैं तुम्हें डायरी लिखने के लिए कह रहा हूँ। यह भी लिख डालो कि तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा है मेरा तुमको यह कहना। यह भी लिख दो कि मुझे तुमसे नहीं कहनी चाहिए थी डायरी लिखने की बात'

'धत्?, ऐसा क्यों लिखें? मुझे तो यह बुरा नहीं लगता। और न ही आपका कहना बुरा लग रहा है। आप तो ठीक ही कह रहें हैं।'

'ऐसा है, तो यही लिख दो। मैं तो देखने भी नहीं जाऊँगा कि तुमने क्या लिखा है, जब तक तुम खुद न दिखाओ।'

'तुम नहीं देखोगे?'

'नहीं! जब तक तुम न कहो।', पति ने आश्वासन दिया और कहा-

'कुछ लोग यही सोचकर नहीं लिखते कि कोई देखेगा तो क्या कहेगा। लेकिन किसी भी बात को सकारात्मक रूप से कहा जा सकता है , ऐसा मेरे एक शिक्षक महोदय ने कहा था। ऐसे अगर लिख सको तो यह संकोच वाली बात जाती रहेगी ।'

'कोई मुझे गालियाँ दे गया तो क्या लिखूँगी। यही न लिखूँगी कि उसने यह-यह बातें कीं या ये-ये गालियाँ दीं। इसमें सकारात्मक क्या होगा?'

'होगा न। तुम लिखो कि उसे ये बातें नहीं कहनी चाहिए थीं। इससे उसका मन भी मलिन हो गया होगा। उसे अपने मन को गंदा नहीं करना चाहिए था। या वह यह-यह उपाय करे तो उसके मन के विचार ठीक हो जाएँगे।' यह कहकर पति ने पत्नी का हाथ पकड़ा और माँ के कमरे की तरफ़ खींचता ले गया। माँ चुपचाप अपने कमरे में बैठी थीं। बिजली के चले जाने पर टीवी भी बंद था, अन्यथा वो कुछ न कुछ देखती रहती थी - कोई सीरियल नहीं तो कोई धार्मिक चैनल पर प्रवचन। लेकिन अभी बिजली के न होने के कारण अकेली बैठी कोई भक्ति का गीत ही गुनगुना रही थीं। पिता तो सुबह से ही व्यापार के सिलसिले में बाहर रहते हैं। पति-पत्नी दोनों दरवाजे के बाहर खड़े रहे ।

'यहाँ क्यों लाये हो मुझे?', पत्नी ने धीरे से पूछा ।

'डायरी लिखने की सामग्री के लिए।', पति ने कहा ।

'क्या हमेशा! जब देखो तब पहेलियाँ बुझाने लगते हो ?'

'माँ को देखकर अभी तुमको क्या लगता है।'

'क्या लगता है मतलब? गीत गुनगुना रही हैं और क्या?'

' चलो अब मैं तुम्हारी तरफ से डायरी लिख कर दिखाता हूँ।' उसने कहा और दोनों अपने कमरे की तरफ चल दिए । माता ने एक बार पूछा 'कौन है, कोई है क्या?' और फिर से गुनगुनाने लगीं। पति ने डायरी खोली और उसे पत्नी को दिखाते हुए लिखना शुरू किया-

माँ कमरे में बैठी गीत गा रही थीं। बिजली चली गई थी। अकेली थीं। शायद बेटियों की याद आ रही थी उन्हें। माँ कभी-कभी क्रोध में आ जाती हैं ।

इतना लिखने के बाद पति अंतिम पंक्ति को काट देता है और लिखता है -उन्हें क्रोध नहीं करना चाहिए था ।

कई दिनों तक डायरी सामने के टेबल पर पड़ी रही। उसे किसी ने हाथ तक नहीं लगाया। पत्नी को लगता इस फेसबूक के जमाने में पति ने क्या डायरी लिखने का सलाह दे दिया। लिखना पढ़ना तो इनके जैसे पत्रकार के लिए ही है। इस डायरी में कुछ लिखने न लिखने से क्या फायदा। वह तो मेरे किसी काम का नहीं ।

एक दिन जब पति अभी नहीं लौटे थे तो पत्नी ने डायरी को लेकर बहुत देर तक निहारती रही। कलम खोजने लगी कि कुछ लिखे। तभी फोन में मैसेज आने की घंटी बज उठी। उठाकर देखा फेसबुक से उसकी सहेली का मैसेज था। देखा और उसका उत्तर दिया फिर फोन रख दिया। और कुछ लिखने का मन नहीं हो रहा था। अजीब अजीब लोगों का फ्रेंड रिक्वेस्ट आया था मन उचट गया था फेसबुक से। उसने सुन रखा था अपने बच्चे के स्कूली दोस्तों के माताओं के मुख से कि फेसबुक चलाने के लिए कितने शातिर दिमाग के लोगों से भी सामना करना पढ़ता है। और हमेशा सजग रहना पढ़ता है कि क्या लिखें या नहीं लिखें और किसे फ्रेंड बनाए किसे नहीं बनाये। एक गलत बयानी पर कितना हंगामा हो गया था और तो और दो लड़कियों द्वारा एक मैसेज लाइक करने के जुल्म में जेल भी जाना पर गया था। इससे तो अच्छा है कि डायरी ही लिखे जिसे अपने पास सुरक्षित रख सकती है जिसे चाहे उसे दिखा सकती है पहले पहल जब वह फेसबुक पर आयी थी तो कितनी खुश थी अपनी सहेलियों को पाकर। पर बाद में इन सहेलियों की भीड़ में कुछ लोग हमेशा बाहर से फेसबुक पर भी घूरते नज़र आये जिसे घुड़ककर भगाया भी नहीं जा सकता। एक का फ्रेंड रिक्वेस्ट हटाया तो दूसरा आ गया । फिर तीसरा..। चौथा।..इन सब से परेशान होकर पत्नी ने पति से फेसबुक आकाउंट डिलिट करने की पद्धति पूछ कर उसे बंद ही कर दिया । फिर ह्वाट्स-अप मिल गया। इसमें पत्नी को कुछ प्राइवेसी दिखाई दी कि जिसे कुछ भेजो वही उसे देखा पाएगा और पहले से उसका नाम भी होना जरूरी है अपने मोबाइल में। डायरी वैसे ही टेबल पर पड़ी रही। एक दो दिन फिर से पत्नी ने डायरी हाथ में लिया और कुछ लिखने चली पर फिर कुछ न काम पर जाता और वह कुछ नहीं लिख पाती। पति का सुझाया हुआ समय सोने से पहले और सुबह उठते ही डायरी लिखाना एक दम से व्यावहारिक नहीं लगा। एक रात लिखने भी बैठी कि नींद इतनी तेज आ रही थी कि फिर कुछ लिखने का मन नहीं हुआ । डायरी बंद पड़ी रही ज्यों की त्यों। और सुबह! सुबह तो उठते ही भाग दौड़ शुरू हो जाती है, तो डायरी लिखना कैसे हो सकता है । बिस्तर से उठते ही दिमाग चला जाता है घर के कामों में और बिना दिमाग के कुछ लिखना कैसे संभव है, बिना दिल के कुछ लिख भी लिया जा सकता है ।

कुछ दिन बाद पत्नी ने अपनी डायरी में लिखकर पति को संकोच करते हुए दिखाया-

दिनाँक: पेज:

एक बेटी अपना सब कुछ छोड़ कर दूसरे घर बहू बनकर लक्ष्मी का रूप लेकर आती है । लेकिन वहाँ उसे दुर्गा, काली बनने पर मजबूर कर दिया जाता है । आइए थोड़ा संक्षेप में इस पर नज़र डालें -

लक्ष्मी का रूप लेकर आई तो सही, लेकिन सभी की इच्छाओं को पूर्ति करते-करते खुद को भी भूल जाती है । हर व्यक्ति को खुश करना चाहती है, लेकिन अफसोस - वो तो खुश करने की कोशिश कर रही होती है लेकिन घर के कुछ लोग गलत ही नजरिया अपना लेते हैं। वे हमेशा खोट ही निकालते रहते हैं उसमें। उसके उत्साह से काम करने की पद्धति पर कहते हैं कि दिखावे के लिए कूद-कूद कर काम किया करती है। लेकिन वो अपनी छोड़े हुए बचपन के प्रभाव में ऐसा करती है। उसे तो लगता है जैसे उसके बापू ने कह दिया हो कि कोई मेहमान आने वाले हैं, और वह उत्साह से भरकर काम में लग जाती है। कभी-कभी तो वह किसी काम के लिए रूठ भी जाया करती है कि यह काम मुझे क्यों नहीं दिया गया । नई बहू के रूप में पहली बार आयी बेटी सोचती है कि यह क्या हो रहा है उसके साथ। मेरे पहले तो सास ननद ही मिलकर काम किया करते थे। माँ-बापू और भाई भी मुझे काम के लिए डाँटते थे मगर ऐसे तो नहीं, मुझे सुधारने के लिए डाँटते थे । तब उस नई बहू बनी बेटी को समझ आता है कि इस तरह हर काम में खोट निकालना ही शायद ताना मारना है। तब उसे ताना मारना जैसे शब्द से परिचय करना पड़ता है। शायद यह भारत की हर बहू के साथ होता है। सास बनी माता भी कभी ऐसी ही परिस्थितियों से गुजरी होती हैं, तो उन्हें तो कम से कम याद रहना चाहिए क्योंकि उनकी बेटी का तो अभी दूसरे के घर जानी बाकी है। शायद उसे वहाँ जाकर ये बातें समझ आएँ।

कुछ समय बाद अब पुरानी हो चुकी बहू सुनते-सुनते क्या करे। उसे अपनी उछल-कूद के साथ काम पर भी लगाम देनी पड़ती है ताकि इससे शांति हो। फिर भी शांति नहीं होती है। तब सुनना पड़ता है कि यह नई बहू किसके लिए क्या करती है? सिर्फ खाना तो बनाती है और महारानी जैसी पड़ी रहती है । प्रत्येक दिन कभी दस लोगों में से किसी का भी भोजन कम पड़ जाए तो बहू को ही दोष दिया जाता है, इस ताने के साथ कि फलाने का खाना कम पड़ गया, जानबूझकर कम बनाया होगा। और किसी दिन खाना बच गया तो भी बहू को

ही दोष दिया जाता है, यह कहकर कि बाप के घर से आ रहा है जो इतनी मंहगाई में इतना-इतना खाना फेंका जा रहा है। लेकिन जब कोई बाहर से ही खाना खाकर आ जाता है और घर में खाना बच जाता है तो उसे कोई नहीं समझाता। उस स्थिति में भी बहू में ही दोष खोजने की कोशिश की जाती है। कभी कभार तो लगता है कि बहू को दूसरे घर से सिर्फ काम करवाने के लिए ही लाया गया है ।

इन परिस्थितियों में बहू दुर्गा का रूप ले लेती है- जो उसे लगता है जो गलत है उसे गलत कहना शुरू कर देती है। बातों का जबाब देना शुरू कर देती है। तो अब सुनना पड़ता है कि बहू का खानदान ही गलत है। वो जिस शहर की होती है वह पूरा का पूरा शहर ही बेकार हो जाता है। उस शहर की लड़कियाँ ही ऐसे जुबान लड़ाने वाली होती हैं, वहाँ के लोग अपनी बेटियों को ऐसा ही सिखा कर भेजते हैं।

इन सब के बावजूद बहू अपनी पहचान नहीं खोना चाहती। अपने आप को भी खोना नहीं चाहती। खट्टे-मीठे रिश्तों को लेकर चलती रहती है। लेकिन फिर भी उसे समझने का कोशिश नहीं की जाती है। कोई रास्ता नहीं अपनाया जाता है। उसके मत्थे यहाँ तक कलंक लगा दिया जाता है कि इसके आने से ही सारा घर टूट गया। अगर किसी को गंभीर बीमारी आ घेरती है तो उसका दोष भी उसी के सर मढ़ दिया जाता है। कहा जाता है कि इसके आने से ही सारे घर में अपशकुन हो रहा है।

जब उसके आने से कुछ अच्छा हुआ है, शुभ हुआ है तो इसका श्रेय भी नहीं दिया जाता है। ऐसे में सब चुप रहते हैं। इस अन्याय को देख कर मन में घोर अंधेरा छा जाता है। तब ही वह बहू माँ काली का रूप ले लेती है। और इस काली के रूप को शांत करने के लिए ससुर और पति को शिव का रूप लेकर आना पड़ता है । औरत ही औरत की दुश्मन बनी होती है, जिसमें लाचारों की तरह ससुर अपनी पत्नी और अपनी बहू के बीच फँसे होते हैं और पति अपनी माँ और अपनी पत्नी के बीच फँसे होते हैं। पुरुष का दर्द शायद पुरुष समझ भी ले लेकिन एक नारी दूसरी नारी का दर्द क्यों नहीं समझती। यह वर्षों से ऐसा ही क्यों चला आ रहा है?

डायरी देखकर पत्रकार पति को लगा कि वह जितना सोचता था, किसी आम गृहिणी में लिखने की उससे कहीं अधिक क्षमता है लेकिन वह घर की चारदीवारी के असहज गंभीर और नकारात्मक वातावरण में इतनी उलझी होती है कि उसे बाहर देखने का अवकाश ही कहाँ मिलता है? किसी भी कला को विकसित करने के लिए सकारात्मक वातावरण और प्रयास की आवश्यकता है। दस साल पहले जिस भाषा में वह स्वयं पति लिख रहा था वही भाषा पत्नी की आज की लिखावट में दिखाई देती है। वह तो दस साल से कलम घिस रहा है, तब उसकी भाषा थोड़ी सुधरी है । तो पत्नी अगर लिखना शुरू करे तो साल भर में कम से कम वह जो समाचार लिखता है - एक ही फार्मूले पर -उतना तो वह जरूर सीख लेगी । यही सोचते हुए पति ने डायरी में भाषा और वर्तनी सुधारकर डायरी पत्नी के हाथों में यह कहते हुए रखी- 'कितना अच्छा प्रयास है । अभ्यास करते करते तुम अच्छा लिख लोगी, कम से कम एक लेख तो लिख ही लोगी जो पत्र में छपने लायक हो- अगर साहित्यिक प्रतिभा न भी हो तो । और क्या पता लिखना शुरू करो तो और भी कुछ पता चले।'

डायरी लिखने के बाद पत्नी कितनी शांत लग रही थी। जैसे उसने अपनी बचपन की किसी सहेली को अपने मन की बात कर मन को हलका कर लिया हो।

इतना लिखने के बाद फिर डायरी की मिलन कलम से नहीं हुई। उत्साह में आकर एक दिन लिख तो लिया था पत्नी ने डायरी मगर उसे जारी रखना सम्भव नहीं था। फिर कभी समय नहीं आया कि डायरी में कुछ हरकत आए। रोज पति उसे एक बार उठा कर देख लेता जैसे कोई फेसबुक और ह्वाट्स अप खोल कर देखता है कि कुछ आया कि नहीं। मगर जैसे किसी अच्छे लेख के अनदेखा करने से उसे कष्ट होता उससे भी ज्यादा कष्ट उसे तब होता जब डायरी के पन्ने को वह देख रहा होता है। तब उसे लगता कि डायरी लिखने कि सलाह खामखाह दे दी। लेकिन वह पत्नी से कभी कुछ कहा नहीं, बस देखकर, सोचकर, रह जाता। उसे कुछ लघु कथाएँ याद आते जिसमें एक साहित्यकार पति अपनी पत्नी के मनोभावों को समझ पाने में असमर्थ होता है। उसे लगता कि उसने अपने विचार अपनी पत्नी पर थोप दिए हैं। कभी लगता कि घर के सारे वातावरण के लिए वह स्वयं पति ही जिम्मेदार है। कभी लगता कि अगर औरतें ज्ञान के क्षेत्र में आगे नहीं आयेंगी तो जीवन की गाड़ी आगे कैसे बड़ेगी? भले ही उसकी उपयोगिता उस समय नहीं दिखे मगर उसे बढ़ाते रहने की जरूरत उसे हमेशा महसूस होती। बच्चे भी तो अपनी माता से ही ज्यादा सीखते हैं; तो उसे ज्ञान अर्जन जारी रखना चाहिए था। उसे लगता कि शायद तात्क्षणिक आर्थिक लाभ नहीं दिखाई दे रहा है इसी लिए औरतें इस तरह के कार्यक्रम से उदासीन रहती हैं। फिर उसे रामकृष्ण परमहंस देव के बात याद आते जब किसी ज्ञानी पुरुष ने अपने पत्नी के बारे में कहा था कि बहुत अज्ञानी है तब उन्होंने कहा था -'और तुम क्या ज्ञानी हो?' तब उसे लगता तो क्या वह भी अपनी पत्नी पर अज्ञानी होने का आरोप तो नहीं लगा रहा है? सच तो है कितना काम है -बच्चों को वह जिस ढ़ंग से ख्याल रखती है; उतना हो वह एक दिन भी नहीं रख पाएगा। बच्चे कब खाये? कितना खाये? क्यों नहीं खाये? नहीं खाये तो कैसे खिलाया जाए उनसे उन्हीं के तरह बातें करते करते कब सोने का समय हो गया? बच्चा क्यों रोया? सब उसे ही मालूम था? वह स्वयं एक बार भी उन बच्चों को नहीं खिला पाएगा। शायद परमहंस देव ने इसी लिए ज्ञानी पुरुष के ज्ञान पर प्रश्न चिह्न लगाये थे। उसे अपने ज्ञान पर ग्लानी होने लगी और अपने द्वारा सुझाए गये सलाह पर भी।

तीन महीने बाद ।

पत्नी ने पति से स्वयं कहा 'एक और डायरी लेते आइएगा यह भर गयी है।' यह कहकर वह डायरी उसके हाथों में रख दी ।

'नहीं, तुम्हारी डायरी मैं क्यों पढ़ूँ? रहने दो। बस लिखती रहो, अपने मन की शांति के लिए।'

'नहीं, देखो तो सही।'

'नहीं, रहने दो।'

'याद है तुमने ही कहा था कि मैं जब तुम्हें इसे दूँ तो तुम देखोगे ।'

'हाँ! याद तो है, मगर....'

'अगर-मगर कुछ नहीं। देखो', और पत्नी ने डायरी पति के हाथों में रख दी।

पति को लगा नहीं था कि तीन महीने के अन्दर यह डायरी भर जाएगी और उसमें से समाचार पत्र के लिए स्त्री विमर्श की कुछ सामग्री भी मिल जाएगी। जो पुरुषों की समझ और कल्पना दोनों से बाहर की होगी। पहले तो उसने सोचा कि इसमें फिर से उलाहने ही होंगे। परन्तु जब उसने डायरी के पन्ने खोले तो अवाक् रह गया और अपनी पत्नी की तरफ देखा, जिसके चेहरे पर कोई विद्रोह नहीं पर गम्भीर आत्म-शांति थी। डायरी के कुछ पन्ने वह पूरा पढ़ गया ---

दिनांक: पेज:

आज बच्चे कितने खुश थे। नयी साइकिल पाकर उनको मानो जाने कहाँ का धन मिल गया था। पैर थकने के बावजूद भी वे चलाते रहे।.....

दिनांक: पेज:

माँजी को आज रोते देखा तो मुझे अपनी माँ की याद आ गई। मैंने जाकर पूछा तो वह कुछ बोली नहीं। मेरे जाते ही आँसू पोंछ लिए। शायद उन्हें अपनी बेटी का ख्याल आ गया था, नहीं! हो सकता है उन्हें बरबस अपने पुराने दिनों की याद आ गयी हो.....

दिनांक: पेज:

आज मेरी तबीयत खराब थी । डायरी लिखने का मन नहीं हो रहा था । मगर सोचा थोड़ा ही लिख लूँ । माँजी ने जब आकर मेरे माथे में तेल लगाया तो सरदर्द कुछ कम हो गया । ऐसा लगा कि मेरी माँ ही आ गई हो ।....

दिनांक: पेज:

आज माँ जी के पेट में दर्द हो गया था। मैंने नीबू पानी दिया। आज उन्होंने मुझे अपने पास बैठने को कहा। पास बैठी तो अपने बारे में बताने लगी कि कैसे वो भी जब नई-नई आयीं थी घर में तो कितना परेशान थीं। पंद्रह आदमी का खाना बनाकर भेजना होता था । वह तो कुछ बोल ही नहीं पाती थी किसी को भी ।.....

डायरी बंद करते-करते पति सोचने लगा कि जो कुछ भी छिपा था अब बाहर आ रहा है। पहले घृणा आती थी अब प्रेम.....। उसने पत्नी की तरफ़ देखा। अब आँखों में चमक थी ।

चूंकि भारतीय होकर समन्वित संस्कृति का विकास करना चाहते हैं, इसलिए समस्त भारतीयों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह हिन्दी को अपनी भाषा समझकर अपनाएं।

-डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर

कोविड -19 के बाद शिक्षा व्यवस्था

सुश्री सिम्पी मिश्रा
साल्टलेक, कोलकाता

आज हम जिस दौर में जी रहें हैं वह चुनौतियों से भरा दौर है। इन्हीं चुनौतियों के दरम्यान 'कोरोना वायरस' और इससे फैले संक्रमण ने हमारे समय, समाज और परिस्थितियों को आमूल-चूल बदल दिया। पूरी दुनिया नये सिरे से कई प्रश्नों में घिर गयी, कई समस्या यकायक विश्व पटल पर आच्छादित हो उठा। जिनके निराकरण के लिए विचार विमर्श अद्यतन जारी है और ये कब तक जारी रहेगा इसका जवाब सिर्फ और सिर्फ भविष्य के गर्भ में और संयम के हाथों में है। पर अब यह एक अटल सत्य सा दिखता जान पड़ता है कि कोरोना एकदम से समाप्त होने वाली महामारी नहीं है, संभवत: आगे का जीवन इसके साथ ही जीना पड़े!

इस कठिन काल में कई प्रकार की आर्थिक, सामाजिक, सामरिक बदलाव विश्व भर में आए हैं। परन्तु सबसे अधिक गौर से देखा जाय तो कोरोना -संकट में शैक्षणिक व्यवस्था पर सर्वाधिक असर पड़ा है।चूँकि ऐसा माना जाता है कि शिक्षा से ही देश और समाज का भविष्य तय होता है और आज इस पर भी भारी संकट आन पड़ा है। इन संकटों को न तो टाला जा सकता है, न ही मुंह चुरा कर बैठा जा सकता है। इनसे दो चार होना ही होगा, लड़ना ही होगा। बात यह है कि शिक्षा महज एक प्रक्रिया मात्र नहीं है। ये सामाजिक होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक भी है। यह दो तरफा प्रक्रिया है। शिक्षा को यदि जटिलतम कार्यों में से एक माना जाय तो यह बिलकुल भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। यदि हम पुरातन शिक्षा वयवस्था को ध्यान से देखें तो हमें इसकी महता का ज्ञान होगा। जिन्दगी के एक चौथाई भाग को किस प्रकार महत्वपूर्ण और भविष्य निर्धारक मानकर इसकी नीव की मजबूती पर हमारे पूर्वजों ने समय दिया।

फिर समय बदला, साल बदला, सत्ता बदली, पद्धति बदली और देखते ही देखते शिक्षा का इतिहास बदला। 1850 तक जहां भारत में गुरुकुल की प्रथा चली आ रही थी वह अंग्रेजी शिक्षा के संक्रमण के कारण कान्वेंट और पब्लिक स्कूलों में बदलने लगी। जैसे हर नया प्रयोग निंदनीय ही नहीं होता ठीक वही बात शिक्षा के सन्दर्भ में भी हुई। यह नई शिक्षा पद्धति भी खूब फली-फूली। समय- समय पर जाने कितने रूप इसने बदले, कई नई रीती-नीति को अपने में समाहित करके जीवन की अकाट्य अनिवार्यता बनी रही। शायद ही कभी इंसानी जीवन में 'शिक्षा' का कोई विकल्प मिले!

खैर समय अपनी रफ्तार से चलती रही। नित नये-नये प्रयोग होते रहे। आवश्कताएं बढती रही तो अविष्कार भी होता रहा और फिर हुआ ये कि आविष्कार आवश्यकता से आगे निकलने लगी। इंसानी जरूरतों के साथ शिक्षा भी सरल से जटिल, सामान्य से विशिष्ट और अनिवार्यता से अधिक दिखावा बनने लगी। नये-नये आविष्कारों ने जीवन की गति बढ़ा दी।

अब जब तक हम इन बदली हुई परिस्थिति में जीने की कुशलता हासिल नहीं कर लेते, भविष्य की राह आसन नहीं होगी। ऐसी स्थिति में 'पुरानी शिक्षण पद्धति' में बदलाव कर एक 'नई वैकल्पिक पद्धति' अपनाने की जरूरत होगी। अब 'चाक-टॉक' वाले मेथड से निकल कर 'ई-लर्निंग और ऑनलाइन' वाले मेथड की ओर जाना होगा। जिससे समुचित सामाजिक दूरी को बनाते हुए टीचिंग-लर्निंग को संभव बनाया जाये। ये तो हुई नई शिक्षण पद्धति की बात पर क्या भारत जैसे देश में इसे लागू कर पाना इतना आसान होगा जितना यह कहने या लिखने में लग रहा है! यह एक बड़ा यक्ष प्रश्न सा प्रतीत होता है। जिस देश में 'सर्वशिक्षा अभियान' जैसे कार्यक्रम के तहत बच्चों को स्कूल तक लाने की कवायद की जाती है, जहां उन्हें बाल-श्रम से बचाने हेतु और स्कूल पहुँचाने हेतु कठोर नियमों का प्रावधान करने की आवश्यकता होती है। उस देश में ये शिक्षण- पद्धति अपने मूल लक्ष्य को किस हद तक प्राप्त कर पायेगी? इस तरह की कई अन्य चुनौतियां भी मुंह बायें खड़ी हैं।

दूसरी चुनौती ये है कि शिक्षक भी नई शिक्षण पद्धति में पूर्णता से रचे-बसे नहीं हैं। उन्हें भी इसमें ढ़लने में और छात्रों को ढ़लने में कड़ी मशक्कत करनी पड़ेगी। पर इसकी राह कुछ आसान सी दिखती है। वो कहते हैं न - 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान'। तो कदाचित ये समस्या वक्त के साथ हल हो ही जाएगी।

तीसरी जो सबसे बड़ी चुनौती है - वो है निरंतर बढ़ती आर्थिक विषमता की खाई। पूर्व-कोरोना काल के मुकाबले उत्तर-कोरोना काल में यह खाई तेजी से बढ़ने वाली है। इस विकट परिस्थिति में बहुसंख्यक जनता का जीवन पटरी से उतर गया है। रोजी-रोजगार छुट गये हैं, कल-कारखाने ठप्प हो गये हैं। हताशा-निराशा के बादल घिरने लगे हैं। जिनका सीधा असर बच्चों और उनकी स्कूली शिक्षा पर निसंदेह होने वाला है। जिस तरह से विगत वर्षों में शिक्षा और शिक्षण के क्षेत्र में बदलाव आए वह किसी से छुपा नहीं है। अब इस समय

जब रोजी-रोजगार ही नहीं रहेगा तो बहुसंख्यक आम जनता अपने बच्चे-बच्चियों को शिक्षित करने में कैसे सक्षम होंगे ? जाहिर सी बात है जब तक भोजन की जरूरत की पूर्ति नहीं हो जाती तब तक शिक्षा की अनिवार्यता की वकालत करना हास्यास्पद ही होगा!

आशान्वित बनें रह कर यदि मान लें कि ठीक है ये आर्थिक समस्या कुछ हद तक काबू में कर भी ली जाए तो क्या 'डिजिटल शिक्षा' दूर-दराज के गावों में अपनी पैठ जमाने के योग्य हो गयी है ? आंकड़े बताते हैं कि भारत में इन्टरनेट पेनिट्रेशन कुल आबादी का मात्र 36 प्रतिशत है। उसमें भी इन्टरनेट प्रयोग करने वालों के का आंकड़ा प्रति 100 व्यक्तियों पर मात्र 78 है, तथा फिक्स्ड ब्रॉडबैंड सब्सक्रिप्शन की स्थिति प्रति 100 व्यक्तियों पर मात्र 1.34 ही है। साथ ही साथ यदि अन्य डिजिटल संसाधनों की बात की जाए तो उनमें भी काफी अंतर है फिर चाहे वो स्मार्टफोन की हो या बिजली आपूर्ति की। इस अंतर को अचानक से पाट पाना थोड़ा कठिन सा है।

तो यह कहना बिलकुल भी आसान नहीं होगा कि 'कोविड-19 के बाद शिक्षा व्यवस्था' की दिशा और दशा कैसी होने वाली है परन्तु सकारात्मकता बनाये रखना ही मानवीय स्वाभाव है। अत: आशा है कि जिस प्रकार हर रात के अँधेरे के बाद सुबह नया उजाला होता है ठीक उसी प्रकार इस अँधेरे के पार भी उजाला होगा। जिसे वर्तमान की सतर्कता, सूझबूझ और निरंतर प्रयास से संभव किया जा सकता है। इतना तो तय है कि कोविड-19 के बाद शिक्षा व्यवस्था के परंपरागत रूप में परिवर्तन अपेक्षनीय और अवश्यसंभावी है। अब देखना यह है कि किस तरह और कैसे ये नये प्रयोग 'न्यू नार्मल' के दौर में सार्थक होते हैं।

चूँकि शिक्षा तो एक अनवरत प्रक्रिया है जिसे रोक पाना संभव नहीं। इसमें कोई दो राय नहीं है कि शिक्षार्थियों के मनोयोग को 40-45 मिनट से ज्यादा क्लासरूम में बनाये रखना कभी-कभी शिक्षक के लिए कितना दुष्कर कार्य बन जाता है। अब देखना यह है कि इस नये शिक्षण पद्धति में किस प्रकार शिक्षक 16 इंच के ब्लैकबोर्ड के बिना 6 इंच के मोबाइल पर शिक्षा को बनाये और बचाये रखने में सक्षम होते हैं और किस प्रकार शिक्षार्थी अपनी जानी-पहचानी सी 6 इंच वाली दुनिया में अपने हिस्से का वो 16 इंच के ब्लैकबोर्ड की कमी को पूरी कर पाते हैं। चुनौती दोनों के लिए है। तो समाधान भी दोनों तरफ से ही होगी। पढ़ाई के साथ-साथ मूल्यांकन की भी रीती बदलने की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस नई पद्धति में पढ़ाना जितना कठिन हो सकता है उससे अधिक चुनौती पढ़ाये गये ज्ञान के मूल्यांकन को आंकने की होगी। यही आशा है भविष्य से कि कोविड-19 के बाद शिक्षा व्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन आए। अब शिक्षा से तात्पर्य महज 'ज्ञान देना' ही नहीं रह जायेगा। अब यह वाकई में कहा जा सकता है कि शिक्षा से तात्पर्य ज्ञान का आदान-प्रदान है।

धन्यवाद!

भारत के विभिन्न प्रदेशों के बीच हिन्दी प्रचार द्वारा एकता स्थापित करने वाले व्यक्ति ही सच्चे भारतीय बंधु हैं।

-महर्षि अरविन्द घोष

मजहब

पूनम केसरी

एसिस्टेंट, आईसीएआर-निन्फेट, कोलकाता-700040

देशभर में कोरोना के बढ़ते संक्रमण को रोकने के लिए लॉकडाउन लगा था। हालत यह थी कि किसी अपने के मरने के बाद उसे चार लोगों का कंधा मिलना मुश्किल था। धर्म, जाति तो दूर अपने सगे तक को पूछनेवाला कोई नहीं था। ऐसे में एक दिन रामदीन अचानक बीमार पड़ा। समय रहते न दवा मिल पाई न डॉक्टर। मुस्तफा के घर में मातमी सिसकियाँ गूंज उठी। रामदीन की मौत पर पूरा परिवार ऐसे बिलख रहा था मानों सिर से बाप का साया उठ गया हो। रहीम मियां के गुजरने के बाद रामदीन ही मुस्तफा के घर आखिरी बुजुर्ग था। रहीम के बच्चों के लिए वह पिता से कम नहीं था।

दरअसल रहीम और रामदीन बचपन के दोस्त थे। एक साथ पढ़े-लिखे। उठना-बैठना, खाना-खेलना सब साथ। दोनों ने दोस्ती के बीच मजहब को कभी दीवार बनने नहीं दिया था। युवा होने पर रहीम ने बेकरी की दुकान खोल ली। रामदीन को एक दूसरे शहर मे क्लर्क की नौकरी मिल गई। बचपन के लंगोटिया यार अब एक दूसरे से मीलों दूर हो गए लेकिन उनके दिलों में तिल भर की भी दूरी कभी नहीं आई। रहीम की शादी में दोनों दोस्त मिले थे। बाल-बच्चों की जिम्मेदारी के साथ दोनों के बीच खतों का सिलसिला भी थम गया। रहीम चार बच्चों का बाप बन गया। माता-पिता के गुजरने के बाद रामदीन ताउम्र अविवाहित रह गया। घड़ी की सुइयों की तरह वक्त ने दोनों दोस्तों को बुढ़ापे में फिर से मिला दिया। हुआ यूं कि एकबार रहीम पूरे परिवार के साथ आगरा घूमने गया। इत्तेफाक से उसकी नजर ताजमहल के बाहर एक चाय की दुकान पर चाय पी रहे हमउम्र पर पड़ी। रहीम ने रिक्शेवाले को रुकने को कहा और उतरकर उसके पास जा पहुंचा।

रामदीन...तुम रामदीन हो ना? गाजीपुर कुम्हार टोला के रहनेवाले? हाँ पर माफ कीजिये मैंने आपको पहचान नहीं, आंखें कमजोर हो गईं हैं रामदीन ने कहा। रहीम बोल पड़ा यार मुझे नहीं पहचाना बड़े नामुराद हो बरखुरदार। मैं रहीम तेरा बचपन का दोस्त। इतना सुनते ही रामदीन की आंखों के आंसुओं का बांध टूट गया। उसने रामीम को झटके से खींचकर सीने से लगा लिया। दोनों दोस्तों का गला रुंध गया। दो गैर मजहबी का भारत मिलाप देखकर आस-पास के लोग भी ठिठक गए।

रामदीन, रहीम और उसके बीबी,बच्चों को अपने किराये के कमरे में ले गया। जो कुछ भी संभव था वह सारी व्यवस्था की। सारी रात दोनों दोस्त बातें करते रहे। रहीम को पता चला कि रिटायरमेंट के बाद रामदीन एकाकी जीवन बिता रहा है।

रहीम और उसकी बीबी ने कहा, भाई अब आपको हम यहां अकेले रहने नहीं देंगे। आप हमारे साथ हमारे घर रहोगे। जबतक आप साथ नहीं चलते हम भी नहीं जाएंगे। रामदीन का आगे-पीछे तो कोई था नहीं। रहीम की दोस्ती ने उसे साथ चलने को मजबूर कर दिया। रामदीन की जिंदगी में मानों बहार लौट आई हो। रहीम के पोते-पोतियों के साथ खेलना, उन्हें पढ़ाना और कहानियां सुनाना उसकी दिनचर्या बन गयी। दो साल बीते भी नहीं थे कि रहीम की बीबी का इंतकाल हो गया। उसके अगले साल ही रहीम भी चल बसा। रहीम के चारो बेटे मुस्तफा, अब्दुल, रसूल और सलमान ने कहा कि चचा अब आप ही हमारे अब्बा की तरह घर के बुजुर्ग हैं। वे अपने पिता की तरह ही रामदीन का खयाल रखने लगे। यहां तक कि हर छोटे बड़े फैसले उसकी इजाजत के बगैर नहीं करते थे। अब धरती पर सदा के लिए रहने कौन आया है। रहीम के जाने के 3 साल बाद दुनिया पर कोरोना का कहर टूट पड़ा। लॉकडाउन के बीच रामदीन भी चल बसा। मुस्लिम परिवार में रहते हुए भी हिन्दू धर्म का पालन करने वाले रामदीन की मृत्यु के बाद उसका अंतिम संस्कार कैसे हो यह बड़ा प्रश्न था। मुस्तफा ने मुहल्ले के हिन्दू परिवारों से पूछा। कोरोना काल में मुहल्ले के दो एक हिन्दू लोग ही शमशान तक पहुंचे थे। रहीम के चारो बेटों ने पूरे हिन्दू रीति से रामदीन का अंतिम संस्कार किया। मुस्तफा ने मुखाग्नि दी और पूरे तेरह दिनों तक होनेवाले क्रिया कर्म किये।

जिस देश में आज भी भाई-भाई के बीच दीवार खींच जाती है। हिन्दू-मुसलमान को लड़ाकर वोट बैंक की राजनीति होती है। यह कहानी उनलोगों को शायद यह समझा पाए की इंसानित का कोई मजहब नहीं होता।

कहानी: नालायक फरिश्ता

एकलव्य केसरी

149 एन.एस.सी. बोस रोड, कोलकाता 700040

मदन के सुबह की शुरुआत अपने बड़े बेटे को कोसने और अपशब्द कहने से होती थी। मदन और सरिता के दो बेटे थे। बड़ा बेटा मोहन और छोटा कुणाल। दोनों भाइयों में अगाध प्रेम था। पढ़ने लिखने की बजाय मोहन का ज्यादा समय खेलने और मोहल्ले में दोस्तों के साथ बीतता था। ठीक इसके विपरीत कुणाल को सिर्फ पढ़ाई करना ही भाता था। वह स्कूल में हमेशा अव्वल आता। यही वजह थी कि अधिकारी ओहदे पर कार्यरत मदन, कुणाल को बेहद चाहता था।

स्कूल के बाद कॉलेज में भी टॉप करने का सिलसिला जारी रहा। उच्च शिक्षा के लिए कुणाल को माता-पिता ने विदेश भेज दिया। बेरोजगार मोहन पिता की आंखों में खटकता रहता। एक दिन मदन ने बेटे को घर से निकाल दिया। मदन के डर के आगे सरिता की एक न चली। वह पुत्र के वियोग में गुमसुम रहने लगी। कुणाल को विदेश की एक बड़ी कम्पनी में नौकरी मिल गई। मदन को जब पता चला कि कुणाल का उसी कम्पनी में काम करने वाली एक विदेशी लड़की से अफेयर चल रहा है तो उसने राजी खुशी शादी के लिए सहमति दे दी। धूमधाम से लंदन के एक पांच सितारा होटल में कुणाल और एंजेल की शादी हो गई। बड़े भाई के न आने के बारे में जब उसने पिता से पूछा तो मदन ने कहा उस आवारा को यहां लाकर हंसी का पात्र नहीं बनाना चाहता था इसलिए उसे तुम्हारी शादी के बारे में नहीं बताया।

मोहन ने घर से निकाले जाने के बाद मुहल्ले के दोस्तों की मदद से चाय की दुकान खोल ली। मदन और सरिता बूढ़े हो गए। सरिता ने एक दिन कुणाल को बताया कि मदन की किडनी फेल हो गई है, डॉक्टर ने किडनी ट्रांसप्लांट के लिए कहा है। कुणाल ने दो टूक कहा दिया मां बहुत व्यस्तता है किसी डोनर का पता लगाओ और प्लीज मुझे बार-बार फोन करके डिस्टर्ब मत किया करो। इधर पैसे के बावजूद कोई डोनर नहीं मिल रहा था।

मोहन को जब पिता की बिगड़ती हालत का पता चला तो उसने गुपचुप डॉक्टर से मिलकर किडनी देने की बात कही। उसने डॉक्टर को कहा कि उसके माता-पिता से यह बात गुप्त रखी जाए। डॉक्टर ने कुछ जरूरी जांच की और सरिता को डोनर मिलने की जानकारी दी। किडनी ट्रांसप्लांट के बाद मदन की हालत तेजी से सुधरने लगी। अस्पताल से छुट्टी मिलने के बाद जैसे ही वह घर जाने को निकला उसकी नजर मुहल्ले के कुछ लोगों पर पड़ी। उसने अनायास ही पूछ लिया आपलोग यहां? कोई बीमार है क्या? उनमें से एक ने कहा जी हां एक फरिश्ता जिंदगी और मौत के बीच जूझ रहा है लेकिन आप को क्या फर्क पड़ेगा। अब सरिता और मदन न जाने क्यों बेचैन हो उठे और एक साथ बोल पड़े कौन? मोहन के दोस्त से रहा नहीं गया। उसने गुस्से से भरकर कहा आपका नालायक। उसी नालायक फरिश्ते ने आपकी जान बचाने को अपने जान की बाजी लगा दी। आज वह संक्रमण से जूझ रहा है। मदन और सरिता फूट-फूटकर रोने लगे। मदन को अपनी गलती पर पछतावा हो रहा था। उसने अस्पताल डॉक्टरों से कहा जितना पैसा खर्च हो मेरे बेटे को बचा लो। मोहन के पास पहुंचकर मदन उससे लिपटकर खूब रोया। माँ-बाप के भरपूर प्यार, प्रार्थना और इलाज ने मोहन के दिल और शरीर के जख्मों पर संजीवनी सा असर किया। कुछ दिनों बाद मोहन के घर आगमन पर मदन ने पूरे मोहल्ले को पार्टी दी। आज वह मोहन की तारीफ करते थक नहीं रहा था।

राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश के लिए आवश्यक है।

-महात्मा गाँधी

प्रकृति की भाषा

आभा ठाकुर
फ्लैट सं0 303, कृष्ण बलराम अपार्टमेंट
भूतनाथ रोड, पटना-800026, बिहार

प्रकृति की होती है अपनी भाषा
सिखलाती हमें जीवन की परिभाषा
सूरज नियत समय पे होता उदय
नियत समय पे होता ये अस्त
दिनचर्या इसकी कभी नहीं होती अस्त व्यस्त
बताता अनुशासन आवश्यक है जीवन परस्त
दिन के बाद आती रात की बारी
चाँदनी बरसाती निशा जाती वारी
ऋतुओं का क्रमश: अवागमन
सिखाता जीवन जीने का अनुशासन
जेठ की चिलचिलाती धूप की तपन
तत्पश्चात बारिश से नवजीवन देता सावन
धरती का सीना चीरकर डाला गया बीज
अंकुरित हो पुष्पित पल्लवित होता सजीव
ये सिखलाता हमें मेहनत की महत्ता
इसके बिना मिलती नहीं सुख संप्रभुता
पारिस्थितिकी में नानाविध जीवों का समन्नवयन
दर्शाता कुछ यूँ होना चाहिये सामाजिक संतुलन
नदी, पेड़, हवा, सूरज, चाँद, नक्षत्र और ग्रह
करते निज कार्य नि:स्वार्थ निरपेक्ष निरंतर
दे देते निज निधि सर्वदा औरों को
अपनाते अपने कर्मो में सुख, संतोष, अपरिग्रह
सुखकारी, चमकीले उर्जापूर्ण दिवस का भी होता अवसान
तत्पश्चात गहन तम के गर्भ से उदित होता अंशुमान
देता हमें शिक्षा सदा रहो आशावान
आशा-निराशा, सफलता-विफलता हैं अस्थायी अनुभूति
कर्म, मेहनत और निरंतर प्रयास ही हैं खरी विभूति
दिवस, ऋतु, फूलों, सबकी होती नियत अवधि
सदा प्रेरित करते सदुपयोग करें हम अपनी जीवनावधि
सुखमय, सजीव, रोमांचक संसार जब छोड़ जाँए
आपके कर्म, वाणी, व्यवहार सदैव याद आँए
कुछ यूँ निभाती प्रकृति अपने जीवन चरण
सिखाती हमें समभाव से लो जीवन हो या मरण

मुझको कैसे बाँधोगे

राजीव रंजन
अवर श्रेणी लिपिक, भाकृअनुप-निनफेट, कोलकाता

ये शांत रात का अंधियारा,
नैराश्य भाव तो आता है।
देख क्षितिज (गगन) पर सूरज को,
मन हर्षित फिर हो जाता है,
है गाथा जीवन संघर्षो की,
यहाँ घोर निराशा आती है।
पर अपना क्या बिगड़ेगा
अपनी लौह की छाती है।
कुछ बड़ा मिलेगा मनचाहा पर,
पगडण्डी को छोड़ो तुम।
वह बार जोहता शिखर खड़ा,
कोई रीत पुरानी तोड़ो तुम
पर आज हालातों ने मुझको,
भीतर तक है तोड़ दिया।
जिनपर मुझको नाज रहा,
उन लोगो ने भी छोड़ दिया।

भाग्यशाली होते हैं वे लोग

सुश्री मनीषा दूबे 'निम्मी'
फ्लैट नम्बर-1ए, 107,
बांसद्रोनी गवर्नमेंट कालोनी, कोलकाता-700070

भाग्यशाली होते हैं वे लोग
खुदा की रहमत बनीं रहती है जीन पर
देखे हैं हमने, आज भी कई घर जहां
अंधेरों से लड़ते रहते हैं कुछ लोग।

शिकायत की किताबें लिख डाले कई लोग
बरामद होती रहीं जिनकी ख्वाइशें
सूना है, आज भी कई कलम पकड़ने को
तरसती रहती हैं कुछ अंगुलियां।

ए किसान, तेरे तो अच्छे दिन आए हैं

सुश्री मनीषा दूबे 'निम्मी'
फ्लैट नम्बर-1ए, 107,
बांसद्रोनी गवर्नमेंट कालोनी, कोलकाता-700070

बंजर रही मिट्टी में धान की खुशबू पिरोई है,
न जाने कितने तुफानों को झेलकर हर एक की भूख मिटाई है
खुद के ख्वाइशों को दफन कर, औरों की ख्वाइशें निखारी हैं
फिर भी हर किसी के जुबान से हमारे किस्से की गुमनामी हैं।
हिस्सेदारी की बातों से, अनदेखा होते आए हैं।
करो बात इनसे हमारे हक की, नजरें चुराए फिरते हैं।
और सब कहते हैं ए किसान, तेरे तो अच्छे दिन आए हैं।

मैं हिन्दी हूँ..!

सुश्री सिम्पी मिश्रा
साल्ट लेक, कोलकाता

बदलाव में शहर हूँ
ठहराव में गाँव हूँ।

कड़ी धूप में बरगद की छांव हूँ
संप्रेषणीयता में पतवार वाली नाव हूँ।

विविधता में पाश्चात्य हूँ
एकता में प्राच्य हूँ।

जो कल थी उससे नवीन आज हूँ
अब सोशल मीडिया की भी आवाज हूँ।

बीच सभा वस्त्रहीन होती ज्यों द्रौपदी की लाज हूँ
राजनीति की चाकी में कुटती-पिसती बेआवाज हूँ।

गर सुन न सको तो आज भी बेबस-लाचार हूँ
जो देख सको तो विक्टोरिया के सिर का चमकता ताज हूँ।

मौन साधने में स्थिर, धीर, अविचल पहाड़ हूँ
प्रतिउत्तर में महराणा का अचूक वार हूँ।

आपसी क्लेश से जो दूषित हो रही निर्मल गंगा की वो धार हूँ।
अपने आप में अकेली नहीं कई अन्य भाषाओं की भी समाहार हूँ।

हाँ, मैं हिन्दी हूँ....
भाषाओं के मस्तक की चमकती हुई बिंदी हूँ
हाँ, हाँ मैं वही 'हिन्दी' हूँ..।।

मुझे याद है

श्री पिन्टू कुमार
अवर श्रेणी लिपिक
भाकृअनुप–निनफेट, कोलकाता

मुझे याद है
तेरा आना रोज मेरे ख्वाबों में
और छेड़ देना दिल के तार
मुझे याद है
और आंखों से कर जाना
इजहार अपनी मुहब्बत का
मुझे याद है
तेरा हंसना तेरा खिलखिलाना
और मेरी बाहों में सिमट जाना
मुझे याद है
दिल दोनों का धड़कना
एकदूजे के लिए तड़पना
मुझे याद है
तेरी हर बात और हसीन लम्हें
तेरा रूठना और मनाना मेरा
मुझे याद है
घर की इज्जत की खातिर
तेरा प्यार कुर्बान करना
मुझे याद है
जब उठ रही थी तेरी डोली
और मेरी मुहब्बत का जनाजा
मुझे याद है
ढूंढ रही थी तेरी नजरें मुझे
आखिरी सलाम कहने को
मुझे याद है
आज भी दिल में ताजा हैं
वो यादें वो कसमें वो वादे
मुझे याद है
अपनी मर्यादा पर जाता नहीं
मेरे दिल से तेरा अहसास...

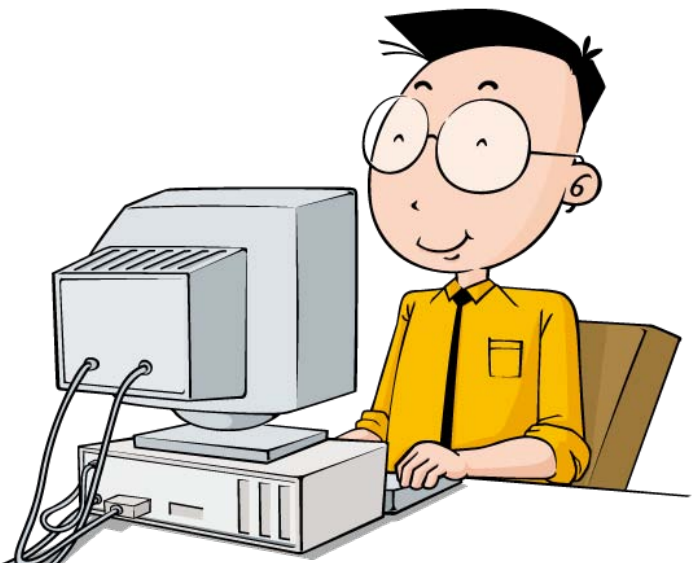

नियुक्ति, बदली और तरक्की

श्री राकेश कुमार कुशवाहा
सहायक निदेशक (राजभाषा)
एनडीआरआई, करनाल

सरकारी कर्मचारी के जीवन में बड़ा महत्व है,
नियुक्ति का, बदली का और तरक्की का ।
नियुक्ति उसके जीवन में लाती है खुशी,
पर बदली का होता कुछ पता नहीं,
मनचाही जगह मिले तो दिल होता है बाग–बाग,
घर से दूर जाना हो तो टूट जाते दिल के तार ।
तरक्की की तो मत पूछिए,
तरक्की तो होती है गूलर का फूल,
याद नहीं रहता कि पिछली तरक्की हुई थी कब कबूल ।
तरक्की के साथ बदली भी हो जाये,
और मनचाही पोस्टिंग मिल जाए तो,
वारे न्यारे हो जाते हैं ।
लेकिन यदि घर–परिवार से दूर जाना हो तो,
होशो–हवास खो जाते हैं ।
लेकिन किया भी क्या जा सकता है,
भर्ती, बदली, तरक्की व सेवा निवृत्ति सरकारी सेवा के मुख्य तत्व हैं ।
जीवन में जिनका बड़ा महत्व है।

कोरोना जा तू

श्री एकलव्य केसरी
कोलकाता

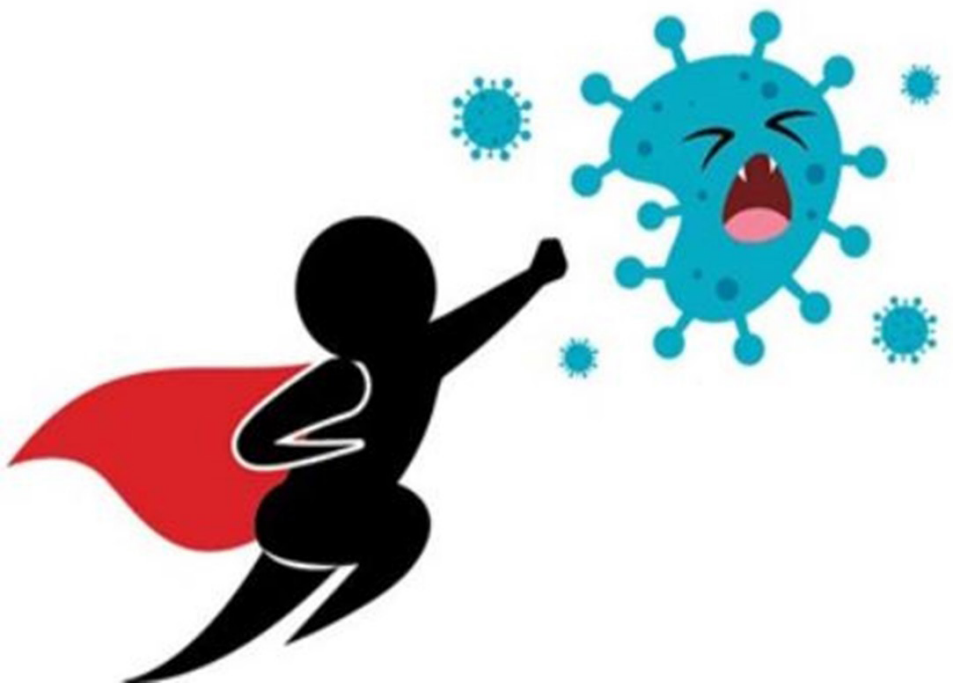

कोरोना जा तू
उकता गया है मन अब
जा जा कोरोना जा तू
माना तेरी ताकत को
अब और ना सता तू
उकता गया है मन अब
जा जा कोरोना जा तू
सड़कों पर है सन्नाटा
लगता न मन जरा सा
कैदी बनाया हमको
न और दे सजा तू
उकता गया है मन अब
जा जा कोरोना जा तू
आटा खतम हुआ है
डाटा खतम हुआ है
कब तक जियेंगे ऐसे
खुद सोचकर बता तू
उकता गया है मन अब
जा जा कोरोना जा तू
नित जा रहीं हैं जानें
निकले न कोई कमाने
मिलने से डर रहे सब
दूरी तो ना बढ़ा तू
उकता गया है मन अब
जा जा कोरोना जा तू
घर से निकलने बाहर
बच्चे मचल रहे हैं
लोगों के दिल की न ले
अब और बददुआ तू
उकता गया है मन अब
जा जा कोरोना जा तू
गर अब भी तू न चेता
बतला रहा हूँ बेटा
जब लू प्रचंड होगी
फिर भस्म बनेगा तू
उकता गया है मन अब
जा जा कोरोना जा तू

भारत माता का आंचल

श्रीमती पूनम केशरी
सहायक, भाकृअनुप–निनफेट, कोलकाता

भारत माता के आंचल को
अब लाल नहीं होने देंगे
वीरों की शहादत ऐसे ही
बर्बाद नहीं होने देंगे
भारत की लाज बचाने को
जब हम हथियार उठा लेंगे
दुश्मन की सीमा में घुसकर
मिट्टी में उसे मिला देंगे
गर आंख दिखाई ऐ चीनी
हम तुमको सबक सिखा देंगे
नापाक हरकतें बन्द करो
वरना औकात बता देंगे
सौगंध देश के माटी की
बात नहीं बस रण होगा
भारत की पावन भूमि पर
बस चारों ओर अमन होगा।

आ अब लौट चलें

श्री पिन्टू कुमार
अवर श्रेणी लिपिक
भाकृअनुप-निनफेट, कोलकाता

आ अब लौट चलें
सहेजने अपनी विरासत
अपने संस्कार, संस्कृति
रीति और रिवाज
जो हो रहे हैं विलुप्त
आधुनिकता के दौड़ में
अलग रहने की चाह
और दौलत की भूख में
छीन गया बचपन
खो गई कहानियां
दादी-नानी की लोरियां
अब नहीं होती
गुड्डे-गुड़ियों की शादियां
क्योंकि छूट गया गाँव
दम तोड़ रहे संयुक्त परिवार
और सिमट गया है जीवन
फ्लैट कल्चर के गिर्द
भागती जिंदगी के बीच
अकेले बच्चे के हाथों में
थमा दिया गया मोबाईल
जो सिखा नहीं सकता संस्कार
और माता-पिता का आदर
अभी भी बदल सकतीं हैं
परिस्थितियां, बस बदलनी होगी
अपनी सोच और जोड़ना होगा
रिश्ता अपनों से पारे की तरह
लौटना होगा हमें
संयुक्त परिवार की ओर
तब फिर से अंकुरित होंगे
संस्कार, नई पीढ़ी में
आ अब लौट चलें सहेजने
अपनी विरासत।

कविता–रूमाल का कोरस

प्रो. संजय जायसवाल
विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर

उस दिन जब तुमने
चुपके से आंखों की मोतियों को
उतार लिया था रूमाल में
जिन्हें मैं अक्सर
सागर सी गहरी कहता
और
उसकी चमक और गहराई में डूबता इतराता

हजारों बार मैंने
वहां चांद को चमकते देखा
असंख्य बार
वहां ख्वाबों के फल फरें

कई बार रेगिस्तान की तपती रेत की तरह
जलती मेरी देह को
तुमने सींचा

मैंने जब जब वहां झांका
मुझे एक नदी दिखी
एक चिड़िया दिखी
एक पेड़ दिखा

जिसके सिर पर अक्सर बादल आकर बैठ...

वहां मुझे दिखा
बारिश की बाट जोहता
एक अधेड़ किसान

सच तुम्हारी आंखों
में छिपे थे
कई रत्न
तरह तरह की मछलियाँ

छिपा था डूब चुका एक साबूत जहाज
छिपी थीं
गोताखोरों की जिज्ञासाएं

वहां मुझे दिखे
सागर मंथन के अवशेष
अमृत और विष के बीच
फंसे देवता और दानव

आज बहुत दिनों बाद
रूमाल की तहों
के बीच रखे
उन मोतियों को निहारता रहा

सच रूमाल के भीतर
अब भी नमी बची है
बची है तुम्हारे मोतियों की चमक

तुम भूल गई
लौटते समय
जब तुम रोयी थी

वह सब दर्ज है
समय के रूमाल में

अक्सर उसके तहों के बीच
तुम्हें देखता हूं

सच कितना सुखद है
एक रूमाल का कोरस
सागर की ओर बेतहाशा भागती
एक नदी की तरह.... ?

'ख्वाहिशों की पोटली'

प्रो. संजय जायसवाल
विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर

वक्त की दीवार पर
आहिस्ते से रख दी है मैंने
ख्वाहिशों की पोटली

जब कभी लगे
उचककर
या
गथियाए ईंटों पर चढ़ कर उतार लेना

और देख लेना
सबकुछ बचा है तो साबुत

दरअसल जल्दी में था मैं
दरवाजा खटखटा नहीं पाया
सांकल तक बड़ा था हाथ
फिर लगा
दिन को ढले
काफी समय बीत गया
अंधेरे में यूं
रोशनी का सामना
मुझसे ना होता

देख लेना
उस पोटली में सैकड़ों
सुबहें हैं
हजारों मुस्कान हैं

सुनो
मैंने उदासी को कोने में गठिया दिया है
मत खोलना गांठ

मैंने बीच में रख दी है
अपनी मुलाकातों को

सुनो
सबसे नीचे मत देखना

मोर के पंख
किताब
अचार
और रोटी को उठाने के बाद
सबसे नीचे वाले हिस्से को
यूं ही फेंक देना

असल में गलती से दर्द
वहीं रह गया
सबसे नीचे
पोटली में

भला ख्वाहिशों की फेहरिस्त में
उसका क्या काम।

आंखवालों को अब नहीं दिखता

प्रो. संजय जायसवाल
विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर

इन दिनों आसमान में
मायावी अंधेपन की चमक फैल गई है
चारों ओर
अंधे मेग्निफाइंग चश्मा पहन
सूक्ष्म से सूक्ष्मतर पर
रखते हैं कड़ी नजर

और आंखवाले
अंधों की सेवा में हैं रत
और अंधे भी हैं मस्त

इन दिनों
आंखवाले ढो रहे हैं
अंधों को बेहिसाब

अंधों ने बचा लिया है
सत्ता,राज्य और धर्म
सौंप आंखवालों को
पद, परमिट और पुरस्कार

आंखवालों को अब नहीं दिखता
नंगे पांव भागती जिंदगी

नहीं दिखता
टीवी के टॉक शो के बीच
जायकेदार मेनू की तरह
परोसे गए डर और भूख से रिरियाते लोगों के टूटते सपने

नहीं दिखता
बूढ़े मां-बाप की दवा की पर्ची
नहीं दिखता
जवान होती बहन का पीलापन
नहीं दिखता
बच्चों के चेहरे पर आंसू की लकीरें

नहीं दिखता
स्लेट जैसा स्याहपन
जो घुल गया है
उस स्त्री के जीवन में
जो रोज रात को चांद से बतियाती है
और सुबह जुत जाती है
नाद और खेत से लेकर कारखानों तक

और हम आंखवाले
जाति, धर्म और संस्कृति का रक्षक बन
कोसते हैं धृतराष्ट्री सरकार को

अनुसंधान परिसर की चित्रकथा

शांति धोज सुनार, अपर श्रेणी लिपिक
भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर, उमियम, मेघालय

निदेशक डॉ. वी. के. मिश्रा पौधारोपण करते हुए

संस्थान में कोविड 19 टीकाकरण अभियान

एबीआई भाकृअनुप बिजनेस मीट

संस्थान में हिंदी दिवस समारोह का आयोजन

हिन्दी उल्लास पखवाड़ा के मुख्य अतिथि श्री दीपक कुमार द्वारा सम्बोधन

हिन्दी उल्लास पखवाड़ा का समापन

संस्थान में महिला दिवस समारोह का आयोजन

विश्व जल दिवस का आयोजन

कृषि क्लीनिक एवं कृषि व्यवसाय पर राज्य स्तरीय कार्यशाल

मत्स्य बीज वितरण मेला

जरूरतमंद किसानों के लिए इनपुट वितरण

कुशल सहायक कर्मचारियों की नियुक्ति

संस्थान में सतर्कता जागरूकता सप्ताह का आयोजन

अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा ली गई शपथ

आजादी के अमृत महोत्सव के तहत खेल का आयोजन

आजादी के अमृत महोत्सव के तहत व्याख्यान का आयोजन

माननीय केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री,
श्री नरेंद्र सिंह तोमर का संस्थान दौरा

माननीय केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री,
श्री नरेन्द्र सिंह तोमर द्वारा पौधारोपण

मत्स्य बीज वितरण कार्यक्रम का आयोजन

''मछली में रोगाणुरोधी प्रतिरोध'' पर
राष्ट्रीय अभियान का उद्घाटन सत्र

पशु स्वास्थ्य शिविर

राष्ट्रीय स्वच्छता अभियान

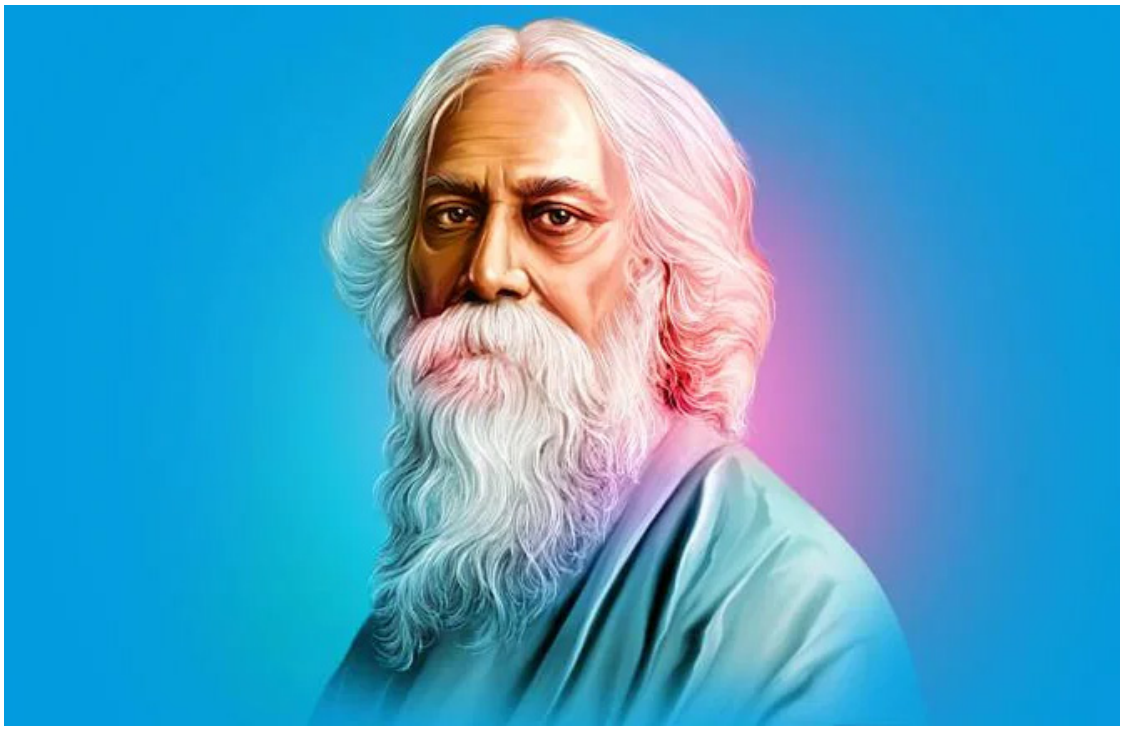

आधुनिक भारत की संस्कृति एक विकसित शतदल – कमल के समान है, जिसका एक-एक प्रान्त, भाषा और उसका साहित्य है। किसी एक को मिटा देने से उस कमल की शोभा नष्ट हो जायगी। हम चाहते हैं कि भारत की सब बोलियाँ जिनमें सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई है, अपने-अपने घर में रानी बनकर रहें और आधुनिक भाषाओं के हार की मध्यमणि हिन्दी भारत भारती होकर विराजती रहे।

–गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भाकृअनुप उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र अनुसंधान परिसर

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

उमरोई रोड, उमियम, मेघालय-793103